GISI Impact Factor 0.2310
मार्च-अप्रैल 2015
वर्ष - 9 अंक - 2
ISSN 0973-9777
ijraeditor@yahoo.in

भारतीय शोध पत्रिका

आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

www.anvikshikijournal.com

प्रकाशन
एम.पी.ए.एस.वी.ओ. द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित
अन्य सहसंयोजन
सार्कः अन्तर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिका
एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
वाराणसी, उ०प्र० (भारत)

MPASVO

मार्च-अप्रैल २०१५ वर्ष-९ अंक-२

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. सारिका त्रिपाठी, डॉ. मुन्नी देवी भास्कर, डॉ. प्रमोद आनंद तिवारी, डॉ. प्रमोद यादव, डॉ. कृष्ण कुमार तिवारी, डॉ. आरती बंसल, डॉ. अर्चना शर्मा, डॉ. आभा रानी, डॉ. कन्हैया, डॉ. अंजली बंसल गोयल, डॉ. शरदेन्दु बाली, डॉ. गीता जोशी, डॉ. रूपाली जैन, डॉ. किरन कुमारी, डॉ. मधुलिका, डॉ. नीलू कुमारी, डॉ. मनीषा आमटे, डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय, डॉ. मनोज कुमार राय, दिनेश मीणा, गुंजन, रमेश चन्द, शंकर, पायल, इन्दरजोत कौर, सिद्धनाथ पाण्डेय, राघवेन्द्र सिंह, आनन्द मोहन, मौसमी कुमारी, देवाशीष पाण्डेय, अमर नाथ, मधुलिका सिन्हा, मोहम्मद अज़फर हसनैन, सन्तोष कुमार

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

रेव डोडामगोडा सुमनासार (श्रीलंका), वेन केन्डागेले सुमनारांसी थेरो (श्रीलंका), रेव टी धम्मारतना (श्रीलंका), पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), फ्रा बूनसर्मस्त्रिथा (थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), मोहम्मद सौरजाई (जाबोल, ईरान), माजिद करीमजादेह (ईराक), डॉ. अहमद रेजा केईखाय फरजानेह (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

सारांश एवं सूचीपत्र

मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र दिल्ली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका सूचीपत्र वाराणसी, सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी सूचीपत्र दिल्ली, डी.के.पब्लिकेशन सूचीपत्र दिल्ली, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्यूनिकेशन एण्ड इन्फारमेशन रिसोर्स सूचीपत्र दिल्ली, नोएडा कॉलेज ऑफ फिज़िकल एजुकेशन सूचीपत्र गौतमबुद्ध नगर

पाठकों से

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डाक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,

टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 1 मार्च 2015

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-9 अंक-2 मार्च-2015

शोध प्रपत्र

दत्तक ग्रहण सम्बन्धी नियम और कानून -डॉ. विभा त्रिपाठी 1-3
"मनुस्मृति में योग विवेचन" -डॉ. स्मिता द्विवेदी 4-5

नारी के सम्बन्ध में "ऋग्वेद संहिता प्रथम मण्डल : तृतीय खण्ड" का सम्पूर्ण अध्ययन -डॉ. मनीषा शुक्ला 6-9
महासंक्रान्ति के महानायक : कबीर -प्रो. अंजली श्रीवास्तव 10-13

आर्थिक विषमता पर गहरा आघात करती 21वीं सदी की हिन्दी कविता -डॉ. राधा वर्मा 14-18
समकालीन प्रमुख रचनाकारों की मूल्य-दृष्टि और प्रसाद : एक विवेचन -डॉ. अंशुमाला मिश्रा 19-22

भारतीय इतिहास में नारी -डॉ. जयन्ती सोनवानी 23-27
स्वामी विवेकानंद जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार -डॉ. मनीषा आमटे 28-30

अयोध्या के साधु : सामाजिक एवं आर्थिक विवेचन -डॉ. सुधीर कुमार राय एवं अरुण बहादुर सिंह 31-40
छत्तीसगढ़ राज्य सचिवालय एवं संचालनालय के बीच सम्बन्ध -पूजा बाजपेयी 41-46

विज्ञानभिक्षु का समन्वयवादी दर्शन : एक समीक्षात्मक विवेचन -डॉ. किरण कुमारी 47-50
महात्मा गांधी : दलित उद्धार के विचारक -ब्रजेश कुमार 51-55

देव नदी सरस्वती का प्लक्षप्रस्रवण से उद्‌गम पौराणिक प्रमाण -डॉ. शरतेंदु बाली 56-64

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564, पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,1-3
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 फरवरी 2015

दत्तक ग्रहण सम्बन्धी नियम और कानून

डॉ. विभा त्रिपाठी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *दत्तक ग्रहण सम्बन्धी नियम और कानून* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *विभा त्रिपाठी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

दत्तक ग्रहण की प्रक्रिया वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक माता-पिता किसी दूसरे माता-पिता, संस्था या राज्य के माध्यम से किसी पुत्र या पुत्री को गोद लेते हैं जिसके बाद वह पुत्र या पुत्री अपने नये माता-पिता के विधिक पुत्र या पुत्री समझे जाते हैं; अर्थात् दत्तक ग्रहण के द्वारा ऐसे माता-पिता जो किसी बच्चे के जन्म से सम्बन्धी नहीं हैं उसके साथ माता-पिता का सम्बन्ध स्थापित करते हैं। माता-पिता विहीन अथवा परित्यक्त बच्चे के लिए दत्तक ग्रहण का अभिप्राय शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से एक सन्तुलित पारिवारिक वातावरण सुनिश्चित करना है। परित्यक्त एवं अनाथ बच्चों की समस्यायें खत्म करने का एक सशक्त माध्यम है दत्तक-ग्रहण। विश्व के कोने-कोने तक दत्तक ग्रहण की प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। भारत वर्ष में सदियों से इस प्रथा के चलन के प्रमाण मिलते हैं। दत्तक ग्रहण की प्रक्रिया विधिक है परन्तु यह व्यक्तिगत विधि की विषय-वस्तु है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि मुस्लिम, ईसाई एवं पारसी समुदाय के व्यक्तिगत विधियों में दत्तक ग्रहण का कोई प्रावधान नहीं है। अतः ऐसे समुदाय के लोग Guadians and Wards Act, 1890 के अन्तर्गत दत्तक ग्रहण कर सकते हैं। इसे विजमत बंतम या धात्रेय पालन की प्रक्रिया कहा जा सकेगा। धात्रेय पालन के अन्तर्गत लिया जाने वाला बच्चा जब वयस्क हो जाता है तब वह अपने सभी सम्बन्धों को तोड़ सकता है। ऐसे बालक के पास उत्तराधिकार का कोई विधिक अधिकार नहीं होता है। कोई विदेशी जो किसी भारतीय बच्चे को दत्तक ग्रहण में लेना चाहता है तो उसे भी Guadians and Wards Act, 1890 अन्तर्गत उल्लिखित प्रक्रिया का अनुसरण करना पड़ता है। यदि दत्तक ग्रहण के माध्यम से किसी बच्चे को एक देश से दूसरे देश में जाना पड़ता है तो इसे अन्तरदेशीय दत्तक ग्रहण कहा जाता है।

अर्थात् दत्तक सम्बन्धी नियम एवं कानूनों की सम्पूर्ण व्याख्या में प्राचीन एवं अद्यतन हिन्दू विधि के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अंगीकृत घोषणा पत्रों एवं अभिसमयों पर चर्चा भी प्रासंगिक होगी।

* एसोसिएट प्रोफेसर, विधि संकाय, का. हि. वि. वि. वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

हिन्दू विधि के अन्तर्गत दत्तक ग्रहण की चर्चा करते समय यह प्रासंगिक हो जाता है कि हम प्राचीन समय की स्थिति को भी जान लें। मनु के अनुसार दत्तक ग्रहण से अभिप्रेतहै ''एक पुत्र जो जाति में समान हो और जिसको उसके माता अथवा पिता (अथवा दोनों) ने आपत्काल जल के साथ दे डाला है, व दत्तक पुत्र के रूप में विदित होता है।''

दत्तक ग्रहण का उद्देश्य अधिकांश मामलों में धार्मिक होता है मनु के अनुसार दत्तक ग्रहण के दो उद्देश्य हैं; प्रथम है पिण्ड दान एवं जल दान से मिलने वाला आध्यात्मिक लाभ और दूसरा है दत्तक ग्रहिता के नाम और वंश का जारी रहना।

अधुनिक हिन्दू विधि का उद्देश्य एक निरीह, लाचार और परित्यक्त बच्चें को संरक्षण प्रदान करना और माता-पिता का स्नेह एवं पारिवारिक वातावरण उपलब्ध कराना है। इसका उद्देश्य परिवार को पूर्णता प्रदान करना भी है, अर्थात् एक व्यक्ति जिसके पास केवल पुत्र है वह पुत्री को और पुत्री है तो पुत्र को गोद लेकर अब अपना परिवार पूरा कर सकता है।

हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण पोषण अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत दत्तक अब एक धर्मनिरपेक्ष प्रकृति का कार्य माना जाता है; और एक वैध दत्तक ग्रहण के लिए यह आवश्यक है कि वह विधि की आवश्कताओं के अनुरूप किया गया हो। यह एक दीगर बात है कि एक हिन्दू दत्तक ग्रहण के अधिकार का पालन करते समय पुराने मूल्यों को भी मान सकता है। यानि वह चाहे तो अपनी पुत्री के पुत्र, या बहन के पुत्र या किसी पुत्री को दत्तक ग्रहण में न ले।

यहाँ पर स्पष्ट कर देना उचित होगा कि वर्तमान विधि की धारा 15 यह प्राविधानित करती है कि एक बार किया दत्तक ग्रहण अन्तिम और अविखण्डनीय हो जाता है। किसी भी परिस्थिति में बच्चे को अब छोड़ा नहीं जा सकेगा।

दत्तक ग्रहण के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक प्रश्नों का उत्तर अवश्य ज्ञात होना चाहिए जैसे कि, कौन दत्तक ग्रहण में बच्चे को ले सकता है? कौन दत्तक ग्रहण में बच्चे को दे सकता है? किसे दत्तक ग्रहण में लिया जा सकता है? दत्तक ग्रहण की औपचारिकतायें क्या है? और दत्तक ग्रहण का प्रभाव क्या होता है? इत्यादि।

विधि यह व्यवस्था करती है कि ऐसा कोई भी हिन्दू पुरूष या स्त्री जो वयस्क है एवं स्वस्थ्य चित्त का है वह दत्तक ग्रहण के द्वारा किसी पुत्र या पुत्री को स्वीकार कर सकता है।

विधि यह भी आवश्यक मानती है कि जिस बच्चे को ग्रहण किया जाता है वह हिन्दू हो चाहे वह दत्तक ग्रहीता के विवाह या रक्त सम्बन्ध में आता हो या एकदम अजनबी हो।

प्राचीन विधि के विपरीत वर्तमान विधि यह व्यवस्था करती है कि एक अनाथ या परित्यक्त बच्चा भी दत्तक में ग्रहण किया जा सकता है।

ऐसे व्यक्ति को दत्तक में नहीं ग्रहण किया जा सकता है जो विवाहित हो परन्तु जब पक्षकारों को लागू होने वाली कोई ऐसी रूढ़ी या प्रथा हो जो विवाहित व्यक्तियों को दत्तक में लिये जाने की अनुमति देती हो तब ऐसा विवाहित व्यक्ति भी दत्तक ग्रहण में लिया जा सकता है।

दत्तक ग्रहण में लिये जाने वाले पुत्र की आयु 15 वर्ष से कम होना चाहिए। इसके विपरीत प्रथा यदि उपबन्धित करे तो विशिष्ट रूप से उसका अभिवचन करना पड़ेगा तत्पश्चात् ही किसी 15 वर्ष की आयु के व्यक्ति को दत्तक ग्रहण में लिया जा सकेगा। एक अधर्मज एवं जड़बुद्धि बच्चा भी वैध रीति से दत्तक में ग्रहण किया जा सकता है। किसी पुत्र या पुत्री को दत्तक ग्रहण में लेने के पूर्व यह सुनिश्चित करना आवश्यक है ऐसे दत्तक ग्रहीता का पुत्र-पुत्री या पौत्र-पौत्री या प्रपौत्र-प्रपौत्री दत्तक के समय जीवित नहीं थे।

यदि दत्तक किसी पुरूष द्वारा लिया जाना है और दत्तक में लिया जाने वाला व्यक्ति नारी है तो दत्तक पिता कम से कम 21 वर्ष आयु में बड़ा होना चाहिए और इसी तरह जब कोई स्त्री किसी पुरूष को दत्तक में ग्रहण करेगी तो वह उम्र में 21 वर्ष बड़ी होगी।

धारा 12 के अन्तर्गत दत्तक ग्रहण का परिणाम बताया गया है जो इस प्रकार है- दत्तक ग्रहण में लिया गया व्यक्ति सभी उद्देश्यों के लिए दत्तक पिता या माता का पुत्र समझा जायेगा और ऐसी तारीख से यह समझा जायेगा कि उस अपत्य के अपने जन्म के कुटुम्ब के साथ समस्त बन्धन टूट गये हैं और उनका स्थान उन बन्धनों ने ले लिया है जो दत्तक कुटुम्ब में दत्तक के कारण सृजित हुये हों- परन्तु दत्तक ग्रहण में लिया गया व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह नहीं कर सकेगा जिससे वह विवाह नहीं कर सकता था यदि वह अपने जन्म के कुटुम्ब में ही बना रहा होता।

इसके विपरीत जब कोई मुस्लिम, ईसाई, पारसी अथवा Jews, Guardians and wards Act, 1890 के अन्तर्गत किसी बच्चे को गोद लेता है तो वह बच्चा हिन्दू विधि के अन्तर्गत उल्लिखित प्रास्थिति को प्राप्त नहीं करता बल्कि केवल दत्तक में लिए गये पुत्र की 21 वर्ष की आयु पूरी करने तक एक संरक्षक एवं प्रतिपाल्य का ही सम्बन्ध सृजित करता है।

वर्तमान समय में दत्तक ग्रहण का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है। लेकिन ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय दत्तक ग्रहण में यह सुनिश्चित करना कभी-कभी कठिन हो जाता है कि इसका उद्देश्य पुनीत ही है। कभी-कभी यह बालकों के अनैतिक व्यापार का भी माध्यम बन जाता है।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा समय-समय पर घोषित घोषणापत्र एवं अभिसमय में भी दत्तक ग्रहण सम्बन्धी नियमों की चर्चा की गयी है।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिपालन स्थापना तथा दत्तक ग्रहण के विशेष सन्दर्भ में बच्चों के संरक्षण एवं कल्याण से सम्बन्धित सामाजिक तथा विधिक सिद्धान्तों का घोषणापत्र, 1986 अपने अनु0 5 में यह उद्घोष करता है कि बच्चे के अपने माता-पिता की देखभाल से बाहर बच्चे की स्थापना से सम्बन्धित सभी मामलों में बच्चे के सर्वोत्तम हित विशेषतः स्नेह की उसकी आवश्यकता तथा सुरक्षा एवं निरन्तर देखभाल का अधिकार सर्वोपरी विचारणीय होगें।

अनु0 6 यह बताता है कि दत्तकग्रहण की प्रक्रि के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को व्यावसायिक या अन्य उपयुकत प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिये।

अनु0 8 कहता है कि दत्तकग्रहण जैसी वैकल्पिक व्यावस्था के परिणामस्वरूप बच्चे को उसके नाम राष्ट्रीयता अथवा विधिक प्रतिनिधित्व से वंचित नहीं किया जायेगा जब तक कि उसके द्वारा वह एक नया नाम, नयी राष्ट्रीयता अथवा विधिक प्रतिनिधि अर्जित न कर ले।

अनु0 9 बताता है कि अपनी पृष्ठभूमि जानने की प्रतिपालित या दत्तक बच्चे की आवश्यकता को बच्चे की देखभाल के लिए उत्तरदायी व्यक्ति मान्यता देंगे, जब तक कि यह बच्चे के सर्वोत्तम हितों के प्रतिकूल न हो।

अनु0 13 कहता है कि दत्तकग्रहण का प्राथमिक लक्ष्य ऐसे बच्चे को एक स्थायी परिवार प्रदान करना है जिसकी देखभाल उसके अपने माता-पिता द्वारा नहीं हो सकती।

अनु0 14 कहता है कि दत्तक ग्रहण करने वाले व्यक्ति बच्चे के लिए सबसे अधिक उपयुक्त परिवेश का चुनाव करेंगे।

अनु0 17 कहता है कि यदि किसी बच्चे को किसी प्रतिपालक अथवा ग्रहणकारी परिवार में स्थापित नहीं किया जा सकता या किसी अन्य उपयुक्त रीति से उसके मूल देश में उसकी देखभाल नहीं हो सकती, तो बच्चे को एक परिवार प्रदान करने के लिए वैकल्पिक साधन के रूप में अन्तरदेशीय दत्तकग्रहण पर विचार हो सकता है।

इस सम्बन्ध में 1989 के बालाधिकार अभिसमय के अनु0 21 में यह कहा गया है कि वे पक्षकार राज्य जो दत्तक प्रणाली को मान्यता या अनुमति देते हैं, सुनिश्चित करेंगे कि बच्चे के सर्वोत्तम हित सर्वोपरी विचारणीय होंगे तथा वह यह सुनिश्चित करेंगे कि अन्तर-देशीय दत्तक ग्रहण में सम्बद्ध बच्चे को वे रक्षोपाय एवं स्तर उपलब्ध हैं जो राष्ट्रीय दत्तकग्रहण की अवस्था में उपलब्ध रक्षोपायों एवं स्तरों के समान हैं।

दत्तक ग्रहण सम्बन्धी नियमों एवं कानूनों की चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रक्रिया एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया होने के साथ-साथ मानवीय सम्बन्धों की पूर्णता का माध्यम भी है।

सन्दर्भ

संरक्षण एवं प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890
हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण पोषण अधिनियम, 1956
सामाजिक तथा विधिक सिद्धान्तों का घोषणापत्र, 1986
बालाधिकार घोषणापत्र, 1959
बालाधिकार अभिसमय, 1989
हिन्दू विधि, पारस दीवान

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,4-5
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 09 दिसम्बर 2014

"मनुस्मृति में योग विवेचन"

डॉ. स्मिता द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *"मनुस्मृति में योग विवेचन"* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *स्मिता द्विवेदी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

स्मृतियों का साहित्य अत्यन्त समृद्ध रहा है, इनकी संख्या लगभग 200 के आस-पास है जिसमें 70 स्मृतियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं। स्मृति शब्द स्मरण, चिन्तन, ध्यान और धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का वाचक है। ये धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, पराशर, आपस्तम्ब, हारीत, शाण्डिल्य, भरद्वाज, तथा विश्वामित्र इत्यादि योगतत्वज्ञान सम्पन्न मुनियों की श्रुतियों के आधार पर निर्मित किए गए हैं। परिवार, वर्ण, स्त्री, पुरुष, आश्रम, व्यवहार, व्यापार तथा विश्व संचालन के नियम स्मृति ग्रन्थों के विषय रहे हैं। जब तक इनके नियमों का पालन होता रहा तब तक विश्व में कोई क्लेश नहीं रहा। इसमें मुख्य रूप से ब्रह्ममुहूर्त में जागरण, दुःस्वप्न आदि दोषों की निवृत्ति के लिए प्रातः कालिक भगवत्स्मरण मंङ्गल पाठ, मांङ्गलिक पदार्थों का दर्शन, शौच, स्नान, संध्या, देवर्षिपितृतर्पण, देवाराधन, स्वाध्याय, पंञ्चमहायज्ञों का सम्पादन, संस्कारों का निर्देशन तथा विभिन्न आश्रमों के नियम धर्मो का पूर्ण रूप से प्रतिपादन किया गया है।

मनुस्मृति में योग

मनुस्मृति के रचयिता राजर्षि मनु थे, इन्हीं के द्वारा समस्त मानवी सृष्टि का सृजन हुआ है। प्राचीन काल से ही मनुस्मृति को ही सर्वधर्मसंग्रहशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हैं। इनके नियमों को आदर पूर्वक स्वीकार किया जाता था जो मनुष्य के धार्मिक जीवन को सुखमय बनाता था।

मनु के वचन को सर्वोपरी और सभी के लिए कल्याणप्रद माना गया है। अतः सर्वज्ञ ऋषियों में इन्हें ही अग्नि, प्रजापति, इन्द्र, प्राण अथवा साक्षात् परमात्मा के रूप में स्वीकार किया था जैसा कि मनुस्मृति के बारहवें अध्याय से स्वतः ही ज्ञात होता है- *एतमेके पदन्त्याग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्। इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्।।*

उन्होंने पर, अवर और शब्द तीनों ब्रह्मों का साक्षात्कार किया था।

* पूर्व शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

मनुस्मृति के बारह अध्यायों में लोगों के आचार, व्यवहार, राजधर्म, स्त्रीधर्म इत्यादि का विशेष रूप से वर्णन प्राप्त होता है।

छठे अध्याय में मनु ने इन्द्रिय निग्रह को ही प्रधान योग की संज्ञा प्रदान की है। यदि अपनी इन्द्रियों को वशीभूत कर लिया गया तो सम्पूर्ण चित्त वृत्तियाँ स्वतः ही निरूद्ध हो जाती है और भगवद्साक्षात्कार हो जाता है।

योग के द्वारा आत्मसाक्षात्कार करने का प्रयत्न करना चाहिए। यथा- *सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः।।*

राजार्षि मनु ने प्राणों के नियमन को ही योग माना है क्योंकि प्राणायाम के द्वारा मन पर नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है। योगी के अन्तःकरण के सर्वथा शुद्ध हो जाने पर जो जीव के शेष बचे दुर्गुण होते हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं और ईश्वर के सभी गुण उसे प्राप्त होते हैं। *प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम्/ प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्।।*[2]

योगी को शुद्ध परमात्मा का दर्शन होने लगता है। वह ब्रह्मदृष्टि सम्पन्न हो जाता है और संसार में रहते हुए भी सांसारिक कर्मो में नहीं बंधता है। यथा- *सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते। दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते।।*[3]

इन्हें ही राजर्षि मनु ने अपनी स्मृति के अंतिम पद्यों में कहा है कि हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि परब्रह्मपरमात्मा ही सम्पूर्ण विश्व को नियमित और नियन्त्रित करता है। सृष्टि के प्रत्येक कण में उसकी सत्ता विराजमान है अतः चित्त वृत्तियों के निरोध के माध्यम से तथा अन्य योग साधनाओं के द्वारा उस परमात्मा को अवश्य ही सभी अवस्थाओं में जानते रहना चाहिए, यही सभी धर्मो का मूल है, यथा- *प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि/ रुक्माभं स्वप्रधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्।*[4]

इसी प्रकार समस्त जीवों में ईश्वर और ईश्वर में ही समस्त जीवों को देखना चाहिए। सभी प्राणियों में सम दृष्टि रखने वाला योगी अनायास ही ब्रह्म ज्ञान को जान लेता है।

सर्वभूतेष चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि/ समं पश्यन्नात्मयाजी स्वराज्यमधिगच्छति। एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना/ स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम्।।[5]

मनुस्मृति के चतुर्थ अध्याय में यमों के पालन का महत्त्व बतलाया गया हैं कि यमों का पालन करें केवल नियमों का नहीं इनका साधन किए बिना ध्यान और समाधि की सिद्धि होना कठिन है। यथा- *यमान सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः/ यमान् पतत्यकुर्वाणों नियमान् केवलान् भजन्।।*[6]

इनके पालन से चोरी, झूठ, कपट आदि दुराचारों का और काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुर्गुणों का नाश होकर अंतःकरण पवित्र हो जाता है और उसमें उत्तम गुणों का समावेश होकर इष्ट देवता के दर्शन तथा आत्मा का साक्षात्कार होता है यही नहीं साधक जो चाहता है वह सिद्धियाँ भी प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार अपने नियमों को प्रदर्शित करते हुए मनु ने मनुस्मृति में सर्वत्र योग को ही मुख्य तत्त्व मानते हुए धर्मों को परिभाषित किया है। मनु का 'दशाङ्गधर्म' योग के वर्णन प्रसङ्ग में ही निर्दिष्ट किया है तथा भगवत्प्राप्ति को ही योग का प्रमुख प्रयोजन माना गया है।

संदर्भ

[1] *मनुस्मृति,* 12/123
[2] *मनुस्मृति,* 6/72
[3] *मनुस्मृति,* 6/74
[4] *मनुस्मृति,* 12/91
[5] *मनुस्मृति,* 12/125
[6] *मनुस्मृति,* 4

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,6-9**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 फरवरी 2015

नारी के सम्बन्ध में "ऋग्वेद संहिता प्रथम मण्डल : तृतीय खण्ड" का सम्पूर्ण अध्ययन

डॉ. मनीषा शुक्ला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *नारी के सम्बन्ध में "ऋग्वेद संहिता प्रथम मण्डल : तृतीय खण्ड" का सम्पूर्ण अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

नारी चाहे प्रतीक के रूप में हो अथवा पात्र के रूप में, वैदिक मंत्रों में आई है। उपनिषद् काल के बाद नारी की प्रतिभागिता को स्मृतिकाल से लेकर आगे के कालों में कम किया गया है; किन्तु यदि हम वैदिक काल का अध्ययन करें तो लगभग ज्यादातर मंत्रों में स्त्री की प्रतिभागिता का उल्लेख मिल जाता है। इस हेतु ऋग्वेद संहिता प्रथम मण्डल तृतीय खण्ड का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है। आइये क्रम से देंखे, किन-किन मंत्रों में स्त्री की चर्चा आई है। ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 42 में स्त्री विषयक कोई भी मंत्र नहीं है। जबकि इसी मण्डल के 43 सूक्त में *शंनः करत्यर्वते सगंमेषायमेष्यें। नृभ्योनारिभ्योगे।।6।।* यह मंत्र आया है, (हे रूद्र) हमारे घोड़े के लिये शांति करें। (हमारे) मेंढ़ें (भेड़) पुरूष, स्त्रियों (और) गौ (गाय) के लिये कल्याण को करें, ऐसा आया है। जबकि ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 42, 45 में भी कोई भी मंत्र स्त्री विषयक नहीं है।

ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 46 में *एषोउषाअपूर्व्या व्युच्छतिप्रियादिवः। स्तुषेवामश्विनावृहत्।।1।।* इस मंत्र में स्त्री का वर्णन आया है जिसका तात्पर्य, जो पहले नहीं दीखती थी ऐसी प्यारी ऊषा द्युलोक से प्रकट होती है, हे! अश्वि (अश्विन कुमारों) देवताओं (ऐसे काल में) मैं आप की अतिशय करके स्तुति करता हूँ। ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 47 में स्त्री विषयक कोई मंत्र नहीं है। ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 48 के 1 मंत्र में कहा गया है *सहवामेननउषो व्युच्छादुहितर्दिवः। सहद्युम्नेनवृहताविभावरिरा-यादेविदास्वती।।1।।* अर्थात् हे! द्युलोक की पुत्री, विशेष दीप्ति वाली ऊषा, हमारे लिये प्रशंसा योग्य (भोग) के साथ बड़े यश और धन के साथ दानवती (आप) प्रकट हों। इसके 2 मंत्र में *उवासोषाउच्छाच्चनु देवीजी रारथानाम्। ये अस्याआचरणेषदुध्रिरे समुद्रेश्रवस्यतवः।।3।।* कहा गया है जिसका तात्पर्य, ऊर्षा (पूर्वकाल में हमारे पास) निवास करती थी, रथों को प्रेरण करने वाली (वह) देवी आज भी प्रकट हो। जो (हम) उसके आगमन में (मन को) लगाये हुये हैं, जैसे धन की इच्छा करने वाले समुद्र में (मन को लगाते हैं।) 3 मंत्र में आया है *उषोयेतेप्रमामेषुयुञ्जते मनोदानायसूरयः। अत्राहतत्कण्वएषां कण्वतमो नामगृणातिनृणाम्।।4।।*

* प्रधान सम्पादिका, आन्वीक्षिकी पत्रिका, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

अर्थात् हे! ऊषा आपके आने पर जो स्तोता लोग दान के लिये मन को लगाते हैं, उन नर (वीरों) के उस (लोक प्रसिद्ध) नाम को कण्वों में सबसे बड़ा कण्व इस समय प्रशंसा के साथ उच्चारण करता है। जबकि मंत्र 4 में *आद्यायोषेवसूनर्यु षायातिप्रभुञ्जति। जरयन्तीवृजनंपद्वदीयत उत्पातयतिपक्षिणः।।5।।* अर्थात् अच्छे (रस्ते) चलाने वाली ऊषा घर वाली की न्याईं उत्तमता से पालती हुई, चलने वाले (जीवों) को बुढ़ापा प्राप्त कराती हुई आती है वह पैरों वाले (प्राणि समूह को अपने कर्म में) प्रेरण करती है और पक्षियों को उड़ाती है।

ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 48 के 5वें मंत्र में बतलाया गया है *वियासृजतिसमनंव्य1र्थिनः पदंनवेत्योदति। वयोनकिष्टेपप्तिवांसआसते व्युष्टौवाजिनीवति।।6।।* अर्थात् जो (ऊषा) संग्राम को प्रेरण करती है और काम वालों को (अपने काम पर) भेजती है (वह) वेग से चलती (हुई विश्राम) स्थान को नहीं चाहती, हे बहुत अन्न वाली आपके प्रकट होने पर उड़ने वाले पक्षी (अपने घोंसलों में) नहीं बैठते। 6ठवें मंत्र में *एषायुक्तपरावतः सूर्य्यस्योदयनादधि। शतंरथेभिः सुभगोषइयंवियात्यभिमानुषान्।।7।।* इसका तात्पर्य है, इसने सूर्य के उदय स्थान से दूर देश में (रथों को) जोड़ा है यह सौभाग्य वाली ऊषा सौ रथों से मनुष्यों की ओर गमन करती है।

7वें मंत्र में कहा गया है *विश्वमस्यानानामचक्षसेजगज्ज्योतिष्कृणोतिसूनरी। अपद्वेषोमघोनीदुहितादिव उषाउच्छदपस्त्रिधः।।* अर्थात् सारा जगत् इसकेदर्शन के लिये झुका है, सु (मार्ग) में ले चलने वाली (यह देवी) प्रकाश को करती है, द्युलोक की पुत्री धन वाली ऊषा (हमसे) द्वेष रखने वालों को दूर करे और हमें पीड़ा देने वालों को हटावे। 8-9वें मंत्र में *उषाआभाहिभानुनां चन्द्रेणदुहितदिवः। आवहन्तीभूर्यस्मभ्यंसौभगं व्युच्छन्तीदिविष्टिषु।।9।।* अर्थात् हे! द्युलोक की पुत्री, हे ऊषा! हमारे लिये बहुत सौभाग्य को लाती हुई (और हमारे) यज्ञों में प्रकट होती हुई (आप) आनंद देने वाले प्रकाश से सब ओर चमकें। 10वें मंत्र में *विश्वस्यहिप्राणनंजीवनंत्वे वियदच्छसिसूनरि। सानोरथेनवृहताविभावरि श्रुधिचित्रामघेहवम्।।10।।* इसका तात्पर्य है, हे! सु (मार्ग से) ले चलने वाली जो आप प्रकट हाती हैं (इससे) आप में ही सब की चेष्टा और जीवन है, हे विशेष दीप्ति वाली, हे अनेक प्रकार के धनवाली, वह (आप) हमारी ओर बड़े रथ से (आकर हमारी) पुकार को सुनें।

ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 48 के 11वें मंत्र में आया है *उषावाजंहिवंस्व यश्चित्रोमानुषेजने। तेनावहसुकृतोअध्वराँउपयेत्वागृणन्तिवह्नयः।।11।।* अर्थात् हे उषा मनुष्यों में जो नाना प्रकार का अन्न (है) उसकी कामना करो, उससे जो (हवि के) पहुँचाने वाले (ऋत्विज्) आपकी, स्तुति करते हैं, उनको सुकर्म करने वाले के यज्ञों की ओर लाओ। 12वें मंत्र में *विश्वान्देवाँआवहसोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम्। सास्मासुधागोमदश्वावदुक्थ्य1मुषोवाजंसुवीर्य्यम्।।12।।* इसका तात्पर्य है, हे ऊषा! अन्तरिक्ष से सब देवताओं को (यहाँ) सोम पीने के लिये लाओ, हे ऊषा! वह आप गौओं और घोड़ों से युक्त स्तुति के योग्य और बहुत वीरता देने वाले अन्न को हममें स्थापन करो।

इसी तरह 13वें मंत्र में *यस्यारूशन्तोअर्चयः प्रतिभद्राअदृक्षत। सानोरयिंविश्ववारंसुपेशस मुषाददातुसुगम्यम्।।13।।* अर्थात् जिसके खूब चमकते हुये प्रकाश मङ्गलरूप देखे गये हैं वह ऊषा सबसे बरने योग्य मनोहर रूप देने वाले सुख से प्राप्त होने वाले धन को हमारे लिये दें। 14वे मंत्र में कहा गया है *ये चिद्वित्वामृषयः पूर्वऊतयेजुहूरेऽवसेमहि। सानः स्तोमांअभिगृणीहिराधसो षः शुक्रेणशोचिषा।।14।।* अर्थात् हे पूजनीय जो सचमुच प्राचीन ऋषि भी अन्न और रक्षा के लिये आप को बुलाते थे। हे ऊषा! सो (आप) हमारे स्तोत्रों का धन और उज्ज्वल तेज से उत्तर दें।

ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 48 के 15वें मंत्र *उषोयदद्यभानुना विहारावृणवोदिवः। प्रनोयच्छतादवृकं पृथुच्छर्दिः प्रदेविगोमतीरिषः।।15।।* इसमें कहा गया है, हे ऊषा! जो आज (आपने) प्रकाश से द्युलोक के दोनों द्वारों को खोला है (सो आप) हमारे लिये हिंसकों से रहित चौड़े घर को और गौओं से युक्त अन्नों को दीजिये। इसी में 16वें मंत्र में कहा गया है *संनोरायावृहताविश्वपेशसा मिमिक्ष्वासमिडाभिरा। संद्युम्नेनविश्वतुरोषोमहि संवाजैर्वाजिनीवति।।16।।* अर्थात् हे ऊषा! सब प्रकार के बड़े धन से हमको संयुक्त करो और गौओं से संयुक्त करो, हे पूज्य! सब (शत्रुओं) के नाश करने वाले प्रताप से हमें संयुक्त करो, हे बहुत अन्नवाली अन्न से हमको संयुक्त करो।

ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 49 के 1 मंत्र में बतलाया गया है कि *उषोभद्रेभिरागहि दिवश्चिद्रोचनादधि। वहन्त्वरूणप्सव उपत्वासोमिनोगृहम्।।1।।* अर्थात् हे ऊषा! (आप) प्रकाशयुक्त द्युलोक से भी शुभ (मार्गों से) आवें, आप को लाल रङ्ग वाले घोड़े सोममयाजी के घर की ओर पहुँचावे। इसी के 2मंत्र में *सुपेशसंमुखंरथं यमध्यस्थाउषस्त्वम्। तेनासुश्रवसंजनं प्रावाद्यदुहि-*

तर्दिवः।।2।। इसका तात्पर्य, हे द्युलोक की पुत्री ऊषा! आप सुन्दर रूप से युक्त सुख देने वाले जिस रथ के उपर बैठी हो उस (रथ से आकर) आज सुन्दर कीर्ति से युक्त मनुष्य की खूब रक्षा करो। वहीं तीसरे मंत्र में *वयश्चित्तेपतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि। उषः प्रारन्नुतरनुदिवो अन्तेभ्यस्परि।।3।।* अर्थात् हे उज्ज्वल रङ्ग वाली ऊषा! आप के गमन के पीछे-पीछे पांखों वाली पक्षी, दो पाओं वाले (मनुष्यादि और) चार पाओं वाले (गौ आदि) आकाश की सीमाओं से सब ओर बिचरे हैं।

ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 49 के 4थे मंत्र में *व्युच्छन्तीहिरश्मिभिर्विश्वमाभासिरोच्नम्। तांत्वामुषर्वसूयवोगीर्भिःकण्वाअहूषत् ।।4।।* अर्थात् हे ऊषा! सचमुच (अपनी) किरणों से प्रकट होती हुई (जो आप) सारे (संसार) को देदीप्यमान करती हुई प्रकाशित करती हो, उस आपको धन की कामना वाले कण्वंशियों ने स्तुतियों से बुलाया है।

जबकि ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 50 के मंत्र संख्या 9वें में वर्णन हुआ है *अयुक्तसप्तशुन्ध्युवः सूरोरथस्यनपथः। ताभिर्यातिस्वयुक्तिभिः।।9।।* अर्थात् सूर्य ने रथ की पुत्री रूप सात घोड़ियों को (रथ में) जोड़ा है (वह) उन स्वयं जुड़ने वालियों से (आकाश में) चलते हैं। जबकि ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 50-56 तक स्त्री विषयक मंत्र नहीं है। वहीं ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 57 के तीसरे मंत्र में *अस्मैभीमायनमसासमध्वर उषोनशुभ्रआभरापनीयसे। यस्यधामश्रवंसेनामेन्द्रियं ज्योतिरकारिहरितीनायसे।।3।।* अर्थात् हे उज्ज्वल रूप वाली ऊषा! अतिशय करके स्तुति के योग्य इस भयानक (इन्द्र के) वाईं अब यज्ञ में नमस्कार के साथ (हवि को) सम्पादन करो, जिस का नाम, बल और दीप्ति सुनने के लिये बनाये गये हैं जैसे घोड़े चलने के लिये, ऐसा आया है। इसी में 7वें मंत्र में *अस्येदुमातुः सवनेषुसद्यो महः पितुंपपिवाञ्चार्वन्नां। मुषायद्विष्णुःपचतंसहीयान् विध्यद्वराहंतिरीअद्रिमस्ता।।7।।* अर्थात् सर्वव्यापी महाबली अर्थात् इन्द्र अपनी माता के सवनों में रूचिकारी अन्नों और पके हुये चरू को लूटते हुये सोम रूपी यज्ञ के अन्न को तत्काल पी गये, फिर उस अस्त्र चलाने वाले ने पर्वत के बीच में से वृत्र को बींध दिया, ऐसा ज्ञात होता है।

ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 62 के 8वें मंत्र में आया है *अस्माइदुग्नाश्चिद्देवपत्नी रिन्द्रायाऽर्कमहिहव्यऊवुः। परिद्यावापृथिवीजभ्रउवी नाऽस्यतेमहिमानंपरिष्टः।।8।।* अर्थात् वाणी रूप देव पत्नियों ने भी वृत्र के बध के समय इस इन्द्र के लिये स्तोत्र का बुना (स्तुति किये गये वह इन्द्र) विस्तार गये और वे दोनों इसकी महिमा को उल्लंघन नहीं करते। मंत्र 7 में *द्विताविववसनजासनीडे अयास्यः स्तवमानेभिर्कैः। भगोनमेनेपरमव्योसमन्नधारयद्रोदसीसुदंसाः।।7।।* इसका तात्पर्य है, मंत्रों से स्तुति करते हुये ऋषियों के द्वारा बिना प्रयत्न के होने वाले इंद्र ने परस्पर मिली हुई पुराने जन्मवाली द्यौ और पृथिवी को अलग-अलग किया, फिर उस सुकर्मा ने उन दोनों स्त्रियों को ऊँचे आकाश में सूर्य्य की न्याईं धारण किया। *सनाद्दिवंपरिभूमाविरूपे पुनर्भुवायुवतीस्वेभिरेवैः। कृष्णोभिरक्तोषारूशंमिर्वुभिराचरतोअन्यान्यां।।8।।* अर्थात् काले वर्णों से रात्रि और दीप्तिवाले शरीरों से ऊषा, दोनों भिन्न रूपवाली स्त्रियाँ अपनी गतियों द्वारा बारम्बार उत्पन्न होती हुईं, प्राचीनकाल से द्युलोक और पृथिवी के चारों ओर अलग-2 क्रम से घूमती हैं। इसी मण्डल के 62वें सूक्त के 9वें मंत्र में *सनेमिसख्यंस्वपस्यमानः सूनुर्दाधारशवसासुंदरः। आमासुचिद्दधिषेपक्पमन्तः पयः कृष्णासुरूशद्रोहिणीषु।।9।।* अर्थात् श्रेष्ठकर्म का आचरण करते हुये सुकर्म्मा पुत्र ने पुरानी मित्रता को बल से धारण किया है। (हे इन्द्र!) आप कच्चियों के बीच में भी पके हुये दूध को स्थापन करते हो आप काले और लाल रंग वालियों में श्वेत रंग (दूध को स्थापन करते हो।)

10वें मंत्र में *सनात्सनीलाअवनीरवाता व्रतारक्षन्तेअमृताः सहोभिः/ पुरूसहस्त्रजनयोनपत्नीं दुवस्यन्तिस्वसारोअह्नयाणम्।।10।।* अर्थात् चिरकाल से एक स्थान में रहनेवाली गमन से रहित देवी अंगुलियाँ (अपने) बलों से बहुत हजारों यज्ञादि ब्रतों का पालन करती है (ये सारी) बहनें कुटुम्बवाली स्त्रियों को न्याईं न लज्जा से चलने वाले (अपने स्वामी इंद्र की) सेवा करती है और भी *सनायुवोनमसानव्योअर्कैर्वसूयवोमतयोदस्मद्रद्रुः। पतिंनपत्नीरूशतोरूशन्तं स्पृशन्तित्वाशवसावन्मनीषाः।।11।।* अर्थात् हे अद्भुत् ! प्राचीन धर्म की इच्छा करते हुये धन की कामना वाले ऋषि नये स्तोत्रों द्वारा नमस्कार के साथ और शीघ्रता से गये हैं हे बलवाले (उनसेकी हुई) स्तुतियाँ आप को ऐसे स्पर्श करती हैं जैसे कामना करते हुये पति का प्रेम से भरी हुई पत्नियाँ।

स्रोत

ऋग्वेद संहिता, प्रथम मण्डल सूक्त 43, मंत्र संख्या 6
ऋग्वेद संहिता, प्रथम मण्डल सूक्त 46, मंत्र संख्य 1
ऋग्वेद संहिता, प्रथम मण्डल सूक्त 48, मंत्र संख्य 1/2/3/4/5/6/7/8/9/10/11/12/13-16
ऋग्वेद संहिता, प्रथम मण्डल सूक्त 49, मंत्र संख्य 1/2/3-4
ऋग्वेद संहिता, प्रथम मण्डल सूक्त 50, मंत्र संख्य 9
ऋग्वेद संहिता, प्रथम मण्डल सूक्त 57, मंत्र संख्य 3/7
ऋग्वेद संहिता, प्रथम मण्डल सूक्त 62, मंत्र संख्य 8/7/9/10-11

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,10-13
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 फरवरी 2015

महासंक्रान्ति के महानायक : कबीर

प्रो. अंजली श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महासंक्रान्ति के महानायक : कबीर* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंजली श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

नया दर्शन ही नया युग लाता है। कुरीतियों, मूढ़ मान्यताओं एवं अंधविश्वास के अंधेरों से घिरे समाज की चेतना जब मंद पड़ने लगती है, तो उसमें दार्शनिक चिंतन ही प्रखरता लाता है। यद्यपि महात्मा कबीर की चेतना मूलतः आध्यात्मिक थी, परन्तु वे समाज से विमुख न थे। अपने समय की सामाजिक चुनौतियों को स्वीकारने एवं इसके दायित्वों को निभाने का उनमें अपूर्व साहस था। यह वे अवश्य मानते थे कि प्रश्न चाहे निजी जीवन के हों या फिर सामाजिक जीवन के, उनका एक मात्र सही, सार्थक एवं सटीक हल अध्यात्म में ही निहित है ।

कबीर कहा करते थे कि यह सारा जगत एक ही तत्व से उत्पन्न हुआ है। इसलिए सभी प्रकार की भेद दृष्टि मिथ्या है। अपनी इसी आध्यात्मिक दृष्टि से प्रेरित होकर उन्होंने जाति-पाँति, छुआछूत, ऊँच-नीच और ब्राह्मण-शूद्र के भेद का जमकर विरोध किया। आज भी दुनिया के प्रायः सभी विख्यात समाजशास्त्री इस सत्य से एकमत हैं कि सभी तरह के भेदभाव को दूर कर ही एक सुंदर समाज का सृजन संभव है। वह अपनी धुन में गाते थे, 'एक बूँद तैं सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को सूदा।' यानि की परमात्मा ने एक ही बूँद से सारी सृष्टि रची है फिर ब्राह्मण और शूद्र का भेद क्यों ? उनका दार्शनिक चिंतन तो यही कहता था कि, 'एक नूर तै सब जग कीआ, कौन भले कौन मंदे।' अर्थात् एक ही नूर से सारा संसार रचा गया है, फिर भला कौन अच्छा है और कौन बुरा।

उनके दर्शन को आध्यात्मिक समाजवाद का नाम देना पूरी तरह समयोचित होगा। कबीर कहते थे, 'कहै कबीर तेई जन सूचे, जे हरि भजि तजंहि विकारा।'

वस्तुतः पवित्र और शुद्ध तो वे ही लोग हैं, जिन्होंने श्री हरि की भक्ति करके अपने मन के विकारों को दूर कर लिया है।

* सहायक प्राध्यापिका, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय महाराजा महाविद्यालय [सागर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध] छतरपुर (मध्य प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

खरी बात कहने में उनका कोई सानी न था। उन्होंने लोक जीवन को चेताते हुए कहा- क्यों तुम हर छोटी-बड़ी बात के लिए पंडितों और मुल्लाओं का मुँह देखते हो। अरे खुद भी कुछ करो, उनके शब्द हैं, 'पंडित मुल्ला जो लिख दिया,/ वो ही रटा तुम किछु न किया।'

उन्होनें कभी भी किसी पक्ष के दोष-दुर्गुणों से सुलह करने की कोशिश नहीं की। न ही राई-रत्ती उसकी कमियों को छिपाया- बख्शा, बल्कि उन्होंने तो अपने बेलाग फक्कड़पन से इन सबको तार-तार कर डाला। रुई की तरह समाज के सभी वर्गों को धुनकर रख दिया। एक सच्चे जुलाहे की भाँति गुणों (धागों) को उकेरा-निकाला और फिर अपनी अद्‌भुत रीति से समन्वय-सद्‌भाव की चादर बुनी।

उनकी प्रखरता की धार पंडितों एवं मुल्लाओं के सामने ही नहीं स्वयं बादशाह के सामने भी कुंद न पड़ती थी। ऐसी ही खरी सुनाने के कारण ही तो कहते हैं कि बादशाह सिकंदर लोदी ने उन्हें जंजीरों में बँधवा कर गंगा में फिकवा दिया था, पर ईश्वर की कृपा ने उन्हें बचा लिया।

उन्होंने एक नहीं अनेक कष्ट सहे, पर सच्चाई कहने से चूके नहीं। उनका झगड़ा तो समाज को गुमराह करने वालों से था, हिंदू-मुसलमानों से नहीं। उन्होंने कहा था, 'न जाने तेरा साहब कैसा है ?/ मसजिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहब तेरा बहिरा है ?/ चिउंटी के पग नेवर बाजे, सो भी साहब सुनता है। पंडित होय के आसन मारे, लंबी माला जपता है। अंदर तेरे कपट-कतरनी, सो भी साहब लखता है।'

महात्मा कबीर भेद-भाव एवं विषमता पैदा करने वाले बाह्याचार पर निरंतर आघात करते रहे। वह इन्हें मनुष्य को उसके वास्तविक जीवन लक्ष्य से भटकाने का कारण मानते रहे।

काशी उस समय भारत का हृदय थी। वहाँ की राहों पर कबीर की ललकारें रोज ही गूँजती, आबाल-वृद्ध सुनते। उनमें विद्रोह सा जाग उठता। कबीर के शब्द पुराने विश्वासों को झकझोर देते। सारी काशी उनकी बात सुनकर झूमती थी। परंतु मुल्ला और पंडित नहीं सुनते। यह जुलाहा! नीच! धर्म और मजहब के विरुद्ध बोलता है; पर कबीर तो अक्खड़ थे। वह भरी सड़क पर भीड़ के बीच गाने लगे, 'पेटहुँ काहु न वेद पढ़ाया, सुनति कराय तुरक नहीं आया। नारी गोचित गर्भ प्रसूती, स्वांग करै बहुतै करतूती। ताहिया हम तुम एकै लोहू, एकै प्राण बियायल मोहूं।

पथ पर लोगों में हलचल मच गई। पंडित चिल्लाया-पापी है। मुल्ला चिल्लाया-काफिर भी नहीं, दोजख का रास्ता है; और जनता में विचार क्रांति का झंडा फहराने लगा।

कबीर ने गर्जन किया कि इस देश में कोई हिंदू और कोई मुसलमान नहीं। मनुष्य-मनुष्य हैं। उन्होंने नारा दिया- मानव मात्र एक समान। उनके इन स्वरों के समर्थन में प्रचंड जन समूह आ मिला। वे निम्न कही जाने वाली जातियाँ जो इस्लाम के अधिकार की चकमक में मुसलमान हो गईं थीं, उन्होंने भी फिर से अपनी पुरातन गरिमा को पहचाना। उन्होंने स्वीकार किया कि वे भटक गईं थीं और फिर वे कबीर के विचारों की छाप में आने लगीं। वही क्यों, हिंदू-मुसलमान, अमीर-गरीब जो भी इनसान थे, जिन्हें सच्चाई की तलाश थी, वे सब उनके सान्निध्य में आने लगे। जन-जन में नई चेतना फैलने लगी।

कई विख्यात इतिहासवेत्ताओं के अनुसार संत कबीर द्वारा प्रेरित-प्रवर्तित इस नये दर्शन से लोकमत ही नहीं राजमत भी प्रभावित होने लगा। अकबर के विचार कबीर के दार्शनिक चिंतन से प्रभावित हुए बिना न रहे। यह महात्मा कबीर की चिंतन धारा ही थी, जिसमें निमग्न होकर शहंशाह अकबर धीरे-धीरे मुल्लाओं के प्रभाव से मुक्त हो गये। उसने हिंदुओं के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनायी। इतना ही नहीं उसने युद्धबंदियों को दास और मुसलमान बनाने की प्रथा पर 1562 ई. में रोक लगाई। हिंदुओं को तीर्थयात्रा कर और जजिया कर से मुक्त कर दिया। उसने हिंदुओं की भावनाओं को ध्यान में रखकर स्वयं गो-मांस का प्रयोग और सार्वजनिक रुप से गौ-वध वर्जित कर दिया।

यह महात्मा कबीर के दार्शनिक चिंतन का ही चमत्कार था, जिसने अकबर के शासन काल में नवयुग के अभ्युदय की कल्पना को साकार किया। कतिपय प्रख्यात इतिहासवेत्ता भी इस सच को स्वीकार करते हैं कि कबीर साहब के दार्शनिक चिंतन को स्वीकार करके ही अकबर ने परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्व दिया। उनने धार्मिक विद्वेष को दूर करने तथा विभिन्न धर्मों में एकता और पारस्परिक समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया- 'दीन-ऐ-इलाही' की स्थापना की। दीन-ऐ-इलाही के प्रवर्तक के रुप में उसने सार्वजनिक सहिष्णुता की नीति अपनाकर राष्ट्रीय आदर्शवाद का उदाहरण प्रस्तुत किया। उस काल

में कला-संस्कृति एवं ज्ञान-विज्ञान की बहुत प्रगति हुई। इतिहासकारों ने अकबर के काल को भारतीय इतिहास में सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग कहा है।

महात्मा कबीर के चिंतन ने समकालीन संतो-विचारकों को भी प्रभावित किया। एक प्रसंग के अनुसार एक बार सिख पंथ के प्रवर्तक गुरु नानक देव जी की भेंट स्नान करते समय किसी नदी के किनारे उनसे हुई। इस भेंट ने गुरु नानक देव जी को बहुत प्रभावित किया। यह कबीर का प्रभाव ही है कि गुरु ग्रंथ साहिब में कबीर की अनेकों रचनाएं आज भी पढ़ी जा सकती हैं। इसके अलावा संत रैदास, धन्ना एवं सेन जैसे कबीर के समकालीन संत उनके प्रति श्रद्धा भाव रखते थे। कबीर के परवर्ती संतों में दादू, रज्जब, मलूकदास, हरिदास, गरीबदास, बूलासाहब, गुलालसाहब आदि अनेक संतो ने कबीर को अपना आदर्श माना और उनके पंथ को स्वीकार किया।

उस समय काशी में सब घर्म अपने-अपने मठ किये बैठे थे। केवल कबीर के पास कुछ नहीं था, केवल शब्द था। वह इसी शब्द को ब्रह्म कहा करते थे- शब्दब्रह्म। ब्रह्म की तरह ही उनके शब्दों का विस्तार अनंत था। इसमें समाई उनकी चेतना भी ब्रह्म की भांति अनंत थी, अमिट और अजर-अमर थी। इसे न मरना था, न मरी। न मिटना था, न मिटी। यह तो चिर युवा और शाश्वत थी। वह कहा करते, 'राम मरै तो मैं मरुं, नाहीं मरै बलाय। मैं तो राम का बालका, जो मरै न मारा जाय।'

उनके शब्दों के दीप से अनेकों दीप जले। मजहब और जाति के नाम पर विभाजित समाज को वे प्रेम का पाठ पढ़ाने की कोशिश करते रहे। उनका यह प्रेम किसी अगम अगोचर के प्रति दिखते हुए भी मनुष्य मात्र के प्रति था और इसे ही वह श्रेष्ठ जीवन का बेहतर मूल्य मानते रहे। सभी मत एवं पंथों के बीच समन्वय स्थापित करने का आधार उन्होने प्रेम को ही बनाया। उनके स्वर थे, 'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय। ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।'

कबीर का धर्म प्रचार आचरण शुद्धि, लोक कल्याण, साम्प्रदायिक सद्भाव तथा दुष्प्रवृति उन्मूलन पर अवलम्बित था। अनुयायियों ने उनकी जीवनचर्या देखी। रात को कपड़ा बुनना, सबेरे से प्रचार-सत्संग में जुट जाना, भजन वे कब करते होंगे ? भजन किये बिना संत कैसे ?

कबीर कपड़ा बुनते-बुनते रामनाम रटते थे, लोगों पर उन्होंने यथार्थतावादी व्यंग्य कसते हुए कहा, 'कबीर मन निर्मल भया जैसे गंगा नीर। पीछै लगे हरि फिरैं कहत कबीर कबीर/ कबीर माला न जपों जिह्वा कहो न राम/ सुमिरन मेरा हरि करें मैं पाऊ विश्राम।।'

कबीर सच्चे परमार्थी थे। वे अपने सुख-दुःख, हानि-लाभ की परवाह न करके मनुष्य मात्र के लिए स्वाभाविक धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे। कबीर दिखावटी धर्म-कर्म, पूजा-पाठ और कर्मकांड के विरोधी थे, लोगों को सच्चरित्रता तथा नैतिकता का उपदेश देते थे। उनके पड़ोसी मंझन को जो तमाशायी था, उनकी संगत ने साधु बना दिया। एक दिन उसने कबीर से पूछा, 'आप जिस परिवर्तन की बात कहते हैं, जिस एकता-समता के नये युग की अलख जगाते हैं, वह कब आएगा ?'

मंझन के इस सवाल ने कबीर को गंभीर कर दिया। जिस कबीर को लोग अक्खड़ और फक्कड़ कहते थे, उसकी आँखों में युगद्रष्टा की चमक आ गई। मुखमंडल पर ब्रह्मर्षि का सा तेज झलक उठा। वह कहने लगे- विचारों से ही क्रांति होती है। नया दर्शन ही नया युग लाता है। परिवर्तन तो होकर रहेगा।

परन्तु कब तक ? कब तक देश के आँगन में आहें और सिसकियाँ गूंजती रहेंगी ? कब तक नारी को अपमानित होना पड़ेगा ? उन्होंने कहा- मेरे न रहने के पाँच सौ वर्षों का समापन आते-आते सब कुछ बदल जाएगा। देश बदलेगा, जमाना बदलेगा, नया युग आएगा, परन्तु चिंता न करो मंझन, बीच में भी अच्छा समय आएगा।

आज के दौर में उनके संदेश का महत्व कम नहीं हुआ है। तब से अब तक व्यवस्थाएं भले ही अनेकों बार बदल चुकी हों, पर जातीय आग्रह, कुलों का अमानवीय दर्प, वर्ग वैशम्य कहां कम हुआ ? इस दौर का समाज जातीय विषमताओं, सामाजिक रुढ़ियों और कर्मकांडों से उसी तरह ग्रस्त है, जिस तरह मध्ययुगीन समाज ग्रस्त था। उनका संदेश उस काल के लिए भी था, इस काल के लिए भी है। वह तो शाश्वत और सर्वकालिक हैं। अपना अंतिम समय जानकर उन्होंने अपने पुत्र कमाल से कहा- 'मुझे मगहर पहुँचा दो मैं काशी में मरना नही चाहता।' कमाल ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा- 'अब्बा! लोग तो दूर दूर से मरने के लिए काशी आते हैं और आप काशी छोड़ कर मगहर जाना चाहते हैं। सुना है काशी में मरने पर स्वर्ग

मिलता है और मगहर में मरने पर नरक।' कबीर हँसे और बोले- बेटा! मैं काशी और मगहर के विषय में इस भ्रांति को दूर करना चाहता हूँ। 'का काशी का मगहर असर, हृदय राम बस मोरा/ जो काशी तन तजइ कबीरा, रामहिं कौन निहोरा।'

कबीर कहते थे स्वर्ग और नरक मनुष्य की मानसिक स्थिति में निवास करते हैं। संसार में सत्कर्मों से मिलने वाली आत्मशांति स्वर्ग है और पाप कर्मों से मिलने वाली यातना नरक। कबीर पक्के अहिंसावादी थे।

जर्मनी के हाइडलबर्ग विश्वविद्यालय में दुनिया भर से एकत्र विद्वानों ने इक्कीसवीं सदी में इस क्रांतिकारी एवं आस्थावान महान संत की प्रासंगिकता की चर्चा की। मैक्सिको के विद्वान डेविड लारेनेन ने लैटिन अमेरिका के बुद्धिजीवियों पर कबीर के असर को स्वीकारा है। ब्रिटेन के विद्वान थामस डाहनहार्ट कबीर के सूफी अंदाज से प्रभावित हैं। जर्मन विद्वान लोटार लुत्से ने तो कबीर के दोहों का जर्मन अनुवाद भी कर डाला। स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय की लिंडाहेस यह साफतौर पर कहती हैं कि अब कबीर अकेले भारत के ही नहीं, समूची दुनिया के हो गए हैं। उनके अनुसार सहस्त्राब्दि की प्रथम संक्रांति के नायक कबीर का महत्व सहस्त्राब्दि की इस अंतिम महासंक्रांति के समय कहीं अधिक बढ़ गया है। मनीषी और बुद्धिजीवी ही नही, सामान्यजन भी उनके दोहों एवं पदों को उत्साह के साथ अपना रहा है। यहाँ के जोगी, साईं, मलंग, नट, भाट आदि लोक-गायकों के कंठ स्वरों से होते हुए उनके पद अब पश्चिमी धुनों की भी शान बनते जा रहें हैं। कुमार गंधर्व की तरह वे भी अब कबीर के निर्गुण गाने लगे है।

समाज के सभी वर्गों में प्रीति महात्मा कबीर का समन्वय संदेश था। उनके दार्शनिक चिंतन से उस जमाने में भी नये युग की स्थापना हुई। नियति ने उन्हें संक्रांति के इस प्रथम पर्व का पुरोधा बनाया।

संदर्भ सूची

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, वाङ्मय- 45
अखंड ज्योति, फरवरी 2000, दिसम्बर 1999
कबीर का साहित्य- बीजक, साखी

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,14-18
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 फरवरी 2015

आर्थिक विषमता पर गहरा आघात करती 21वीं सदी की हिन्दी कविता

डॉ. राधा वर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *आर्थिक विषमता पर गहरा आघात करती 21वीं सदी की हिन्दी कविता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *राधा वर्मा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

अपने आप से डरता हुआ पूछता हुआ लगातार/ क्यों सिर्फ़ गरीब या क्यों सिर्फ़ अमीर नहीं है सारा संसार।[1] वे कौन से कारण हैं, जिनकी वजह से उदय प्रकाश का कवि यह कहने को मजबूर हुआ ? कारण स्पष्ट है, अमीर-गरीब के बीच व्याप्त गहरी खाई। एक ओर सुख-सुविधाएँ, ऐशो-आराम का जीवन है तो दूसरी ओर पशु स्तरीय जीवन है। आर्थिक स्तर पर विद्यमान अंतर को इक्कीसवीं सदी की हिन्दी-कविता चित्रित कर, शोषक वर्ग के रहस्यों को उजागर करती है कि ये लोग किस तरह आम आदमी के बहाने अपनी तिजोरी भर रहे हैं और राष्ट्रीय विकास योजनाओं के नाम पर बहुत सारा धन अपनी जिन्दगी पर ही खर्च कर रहे हैं। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी-कविता में से गुजरने के बाद कहा जा सकता है कि देश की दुर्दशा देखकर कवियों ने आर्थिक विषमता पर गहरा आघात किया है।

भारतीय समाज में आर्थिक विकास की प्रक्रिया ने अमीर-गरीब के बीच की खाई का विस्तार कर दिया है। अधिकांश जनता गरीबी की रेखा के नीचे रह रही है। आज़ाद देश में लोग किस तरह गरीबी से जूझ रहे हैं, इसे उदय प्रकाश की 'एक लिखी जा रही कविता का पहला ड्रॉफ्ट' कविता की इन पंक्तियों में देख सकते हैं :

> बाहर सड़क पर जहाँ खुल्ला समाज है वहाँ हम/ असुरक्षा, घृणा, भय और भूख को निर्लज्जता के साथ/ अपनी विकट मुस्कुराहटों में ढँकते/ पाँव में बैठे है आधी से भी अधिक सदी से/ अपनी पगार और मंजूरी माँगते।[2]

भूखे आदमी की मनःस्थिति को विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने 'पकड़ा गया हरिया' कविता में चित्रित किया है। इस कविता में मुहल्ले में व्यापारी की कोठी पर उत्सव का पता लगते ही गरीब हरिया बेचैनी से उस का इंतजार कर खुशी से भर जाता है। इस खुशी का कारण कुछ और नहीं बल्कि समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता है; क्योंकि जिस के पास दो वक़्त की रोटी नहीं है, उसे वहाँ तरह-तरह के पकवान मिलने की उम्मीद है। व्यापारी से ज्यादा ही खुश था हरिया/ सूरज धीमी गति से चल रहा था उस दिन/ हरिया ने कई चक्कर लगाये बाहर-बाहर/ भीतर के अमर पकवान की गंध/ भरते हुए अपने भीतर के

* सहायक आचार्य (हिन्दी), राजकीय संस्कृत महाविद्यालय [फागली] शिमला (हि.प्र.) भारत। (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

भीतर।[3] भूख इनसान को क्या बना देती है। जिस लम्हे का वो बेसब्री से इंतजार कर रहा था, उसके बारे में मन ही मन सोचकर खुश हो रहा था, परंतु वह भूखा आदमी रोटी खाते हुए पकड़ा जाता है और अपराधी बन जाता है। भूख आदमी को क्या-क्या नहीं करवाती है। भूख की वजह से ही वह यह सब करता है और अंत में पकड़ा जाता है। शाम को पट गयी सड़क मोटरों से/ और सजे-धजे लोगों की भीड़ में/ घुस गया हरिया भी/ चरम आनंद के उस क्षण/ जब सधी हुई चमच्चों से चख रहे थे लोग/ छप्पन व्यंजन/ हरिया के हाथों से छूटकर गिर पड़ी भरी प्लेट/ और इस तरह पकड़ा गया हरिया/ भरपेट भोजन करते।[4] गरीब व्यक्ति विवश है। पेट की आग को बुझाने के लिए वह दर-दर की ठोकरें खाता है। कवियों ने गरीब व्यक्ति की मजबूरी का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है। 'यह भी उर्मिला है 'कविता में किरण अग्रवाल ने गरीब व्यक्ति की दयनीय स्थिति से रू-ब-रू करवाया है :

पहले वह घरों में/ लोगों के जूठे बरतन माँजती थी/ लेकिन अब उतने से गुजारा नहीं होता/ वह तोड़ती है पत्थर/ ढोती है सीमेंट की बोरियाँ/ फर्श बनाती है/ ढलाई करती है छत की/ और वह सब कुछ/ जो ठेकेदार कहता है।[5]

कविता की इन पंक्तियों से जाहिर है कि वह मजबूरी में, पेट की आग शांत करने के लिए सभी कुछ करने को तैयार है चाहे वह अनुचित, अनैतिक ही क्यों न हो। आर्थिक विषमता से जूझ रहे उसके बच्चों की क्या दशा है ? इससे भी कवियत्री ने परिचित करवाया है :

उसके बच्चे/ आवारा कुत्तों से गलियों में डोलते हैं/ मुट्ठी भर भुने चने या मूँगफली देकर/ कोई भी उसकी बच्चियों को फुसला ले जाता है/ वे नहीं जानती बलात्कार शब्द/ वे सुबक-सुबक कर रोती है बस/ और अपनी नन्ही-नन्ही मैली हथेलियों से/ अपने धूल में सने आँसू पोंछती जाती है। वे नहीं समझती भूने चने/ मूँगफली और आँसू का रिश्ता/ उसके लड़के बहनों की दलाली करते हैं/ और कटी पतंग के लिए आपस में लड़ते हैं।[6]

गरीब व्यक्ति के जीवन की दर्द भरी तस्वीर किरण अग्रवाल ने प्रस्तुत की है। आज़ादी के इतने समय बाद भी अमीर और अमीर और गरीब अधिक गरीब हो रहा है। आर्थिक रूप से सक्षम न होने के कारण अधिकांश व्यक्ति पेट की आग की शांत नहीं कर पाते। भूख इनसान को कुछ भी करने को मजबूर कर देती है। चाहे वह अनैतिकता से भरा हुआ कार्य ही क्यों न हो। निर्मला गर्ग की 'चेहरे' कविता इस का प्रमाण प्रस्तुत करती है। ये पंक्तियाँ इसका उदाहरण है :

बूढ़े सन्न हैं बच्चे बिलख रहे/ उनके चेहरों पर मंडराती है/ आसन्न मृत्यु की छाया/ महिलाएँ मजबूर हुई बेचने/ ठेकेदारों को/ दो मुट्ठी अनाज के लिए/ अपना तन और श्रम दोनों/ दूरदर्शन दिखा रहा है चेहरे/ जो उन्होंने ढँक रखे थे पल्लू से/ क्या यह शर्म उनकी है ?[7]

अन्न के अभाव में जीवन रूपी पहिये का थमना स्वाभाविक है। अन्न है, तो प्राण है। इसके बिना जीवन की कल्पना करना संभव नहीं। ऐसी स्थिति में देश के कर्णधार क्या कर रहे हैं ? कवयित्री यह प्रश्न पाठकों के सामने रख कर सोचने को मजबूर करती है और उनकी कार्यप्रणाली पर प्रश्न चिह्न लगाती है। ऐसी स्थिति उन के सही ढंग से कार्य न करने के कारण ही पैदा हुई है। 'पक्ष' कविता की इन पंक्तियों में इसे देख सकते हैं :

मौसम्मी का रस एक ग्लास पाँच बजे शाम को/ मैं पीती हूँ रोज/ जो बच्चा निकालता है इसे/ वह कभी नहीं पीता एक घूंट/ मौसम्मी के रस की दरकार मुझे ज़्यादा है/ या उस बच्चे की निस्तेज देह को/ इस का फैसला नहीं करती संसद/ न्यायालय नहीं करता/ संसद और न्यायालय मेरे पक्ष में है।[8]

इन गरीब लोगों का सारा जीवन रोटी के संघर्ष में ही गुजरता है। इन को तो सिर्फ रोज की तरह वही खाना-पीना है, जो इन की दिन-भर की कमाई से आसानी से खरीदा जा सके। 'बाहामुनी' कविता में बाहामुनी की विडम्बनापूर्ण स्थिति को देखते हुए निर्मला पुतुल पीड़ा भरे शब्दों में कह उठती है :

तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते हैं पेट हजारों/ पर हजारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट/ कैसी विडम्बना है कि/ ज़मीन पर बैठ बुनती हो चटाइयाँ/ और पंखा बनाते टपकता है/ तुम्हारे करियाये देह से टप-टप पसीना।[9]

अमीरी-गरीबी का आलम यह है कि एक वर्ग के पास ऐशो-आराम सभी कुछ मौजूद हैं, दूसरे के पास इन सभी चीजों का नितांत अभाव है। मौत की नींद में समा रही जिंदगियों के आँकड़े को देखकर उदय प्रकाश 'एक जल्दबाज बुरी कविता में आँकड़े' कविता में शब्दबद्ध करते हुए समाज की वास्तविक हालत से परिचित करवाते हैं :

कविता का एक वाक्य लिखने में दो मिनट लगते हैं/ इतनी देर में चालीस हज़ार/ बच्चे मर चुके होते हैं/ ज्यादातर तीसरी दुनिया के/ भूख और रोग से/ दस वाक्यों की खराब जल्दबाज कविता में अमूनन लग जाते हैं बीस से पच्चीस मिनट/ इतनी देर में चार से पाँच लाख बच्चे समा जाते हैं मौत के मुँह में।[10]

ऐसा होने का एकमात्र कारण है समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता। उत्सवों और पर्वों का मुनष्य के जीवन में खास महत्त्व होता है। अमीर लोग तो इन को बड़ी धूमधाम से मनाते हैं और काफी पैसा खर्च करते हैं; परन्तु कुमार कृष्ण की दृष्टि उन लोगों तक गयी है जो गरीब और अभाव से भरी जिंदगी जीते हैं। आर्थिक रूप से अक्षम लोग दीपावली कैसे मनाते हैं ? इसका चित्रण कवि 'दीपावली' कविता में करता हुआ कहता है कि मुझे मालूम है कि दीपावली पर सब लोग मिठाई नहीं खरीद सकते; परंतु फिर भी वे दीपावली मनाते हैं और बेहतर जीवन के सपने देखते हुए अगली दीपावली का इंतजार करते हैं। ये लोग दीपावली कैसे मनाते हैं, इस की करुण झलकी कवि ने इन पंक्तियों में प्रस्तुत की है :

आग के पर्व पर/ जो नहीं करते मिठाई का इंतजार/ वे भी देखते हैं रेशमी रजाई के सपने/ वे भी करते हैं दाल- भात से/ लक्ष्मी की पुश्तैनी पूजा/ यह दूसरी बात है कि उनके घर/ न कभी लक्ष्मी आती है न रजाई/ वे पुआल की टहनियों पर ही उगा लेते हैं-/ सपनों के अनगिनत फूल ।[11]

कवि ने गरीब लोगों के दीपावली मनाने का अत्यन्त ही सजीव वर्णन किया है। पहाड़ पर बर्फ और नया साल आने का वक़्त एक ही है। उस समय लोग एक ओर घर में बर्फ से निपटने की तैयारियां करते हैं तो दूसरी ओर नया साल का जश्न मनाने की। कवि उन गरीब यानी आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के बारे में सोचता है, जिनके पास घर नहीं है, वह इस समय को कैसे मनाते हैं ? क्योंकि यह वक़्त बहुत कठिन होता है। मुश्किलों को सहनकर जीने को मजबूर लोगों के बारे में कवि की सोच को 'नया साल' कविता की इन पंक्तियों में देख सकते हैं :

बर्फ और नया साल/ दोनों क्यों आते हैं एक साथ/ पहाड़ पर/ आग और पानी की चिंता से/ भर जाता है पूरा घर/ सोचता हूँ/ जिनके नहीं होते घर/ वहाँ किस तरह आता होगा नया साल।[12]

हर इनसान की जीवन में ख्वाहिश होती है कि उस का भी अपना एक घर हो, परन्तु आज के समय गरीब लोगों की ख्वाहिश पूरी होती नहीं दिखाई देती। स्वाधीनता के इनते वर्षों बाद भी निर्धन लोगों के पास छत नहीं है। धूल, मिट्टी में ही इन का जीवन है। मौसम कैसा भी हो गर्म, सर्द या बारिश। इन्हें मौसम की मार झेलनी ही पड़ती है। अनेक आवास योजनाएँ कागजों में बनाई गई हैं। कितनी पूरी हुई ? कितने पात्र व्यक्तियों को यह सुविधा प्राप्त हुई ? शायद चुनिंदा लोगों को। जन-प्रतिनिधि यानी जनता के हक की बात करने वाले प्रतिनिधि के बारे में क्या कहें, वे तो गरीब जनता के हक को हड़पने से भी नहीं हिचकिचाते। तभी तो सरकार से समय-समय पर मिलने वाले फायदों से जनता को वंचित रहना पड़ता है। निर्मला पुतुल की 'ढेपचा के बाबू' कविता की ये पंक्तियाँ उदाहरण है/ बड़ी मुश्किल से लाल कार्ड बनवाया था। ..पर कोई फायदा नहीं दिखता उस का/ कभी कभार कुछ गर आता है भी है/ तो उधर प्रधान ही छाँक लेता है ऊपर-ऊपर।[13] आज़ादी के इतने वर्षों बाद आज़ादी के ठकेदारों के पास किसी भी तरह की कोई कमी नहीं है। धनी और धनवान और गरीब और अधिक गरीब हो रहा है।

आर्थिक स्तर पर अंतर को कवियों ने अनेक कविताओं में चित्रित किया है। ये मेहनतकश लोग अपनी मेहनत भरी जिंदगी को बयान करते हुए कहते हैं कि उनके काम की कोई कीमत नहीं है, न ही उन्हें इनसान समझा जाता है। उदय प्रकाश की एक लिखी जा रही कविता का पहला ड्रॉफ्ट 'कविता की ये पंक्तियाँ इसका प्रमाण है :

एक-एक ईंट जोड़ी है/ मिट्टी दुःख बालू आँसू सिरमिट पसीना बदहवासी को/ अपने जीवन में सानते हुए गारा बनाकर/ अभावों के बेचैन उनींदे रन्दे चलाए हैं हमने/ शीशम सागौन के बेशकीमती नक्काशीदार/ चौखट-दरवाजे पलंगों-सिंहासनों पर/ इसी राजधानी की किसी भी भाषा और भवन की सीढ़ियों पर झुककर तो देखो जरा/ हम, हमारे पुरखे, हमारी संताने बाफ़ाब्ता दफ़्न हैं यहाँ/ उन्हीं के ऊपर बूट धरते कामयाब लोग जाते हैं/ संसद और शॉपिंग माल/ अकादेमी और संस्थान, विश्वविद्यालय और बिड़ला मंदिर।[14]

दूसरों के लिए आलीशान महल बनवाने वाले अपने लिए छत का सपना भी नहीं देख पाते। उनके लिए छत का सपना देखना किसी गुनाह से कम नहीं है। आज की व्यवस्था से कवि खुश नज़र नहीं आते। उन्हें कथनी और करनी के सिद्धान्त

और व्यवहार के बीच बहुत बड़ी खाई दिखाई देती है। अमीरी-गरीबी के फर्क को सीधे-सीधे कहती ये पंक्तियाँ बताती है कि एक छत के इंतजार में आम आदमी को क्या कीमत चुकानी पड़ती है :

एक दीवार उठायी है हमने कि हो अपना भी कहीं ठौर/ और सौ ठोकरें हजार अपमान झेले हैं/ एक खिड़की निकालने पर देखो/ हमारी पीठ पर करोड़ों कोड़ों के लहूलुहान घाव हैं/ एक रोशनदान के एवज़ में मुजरिमों की तरह/ दिन-रात थाने पर बिठाया गया है हमें पुलसिया जुल्म ढाए गए हैं।[15]

निर्मला गर्ग ने भी दूसरों के लिए आलीशान महल बनवाने वाले लोगों को तथा उनके घर के सपने को 'पोस्टर' कविता में चित्रित किया है/ उसकी बाई तरफ की दीवार में एक पोस्टर टंगा है/ सर पर ईंट ढोती/ नौ-दस वर्ष की लड़की है वहाँ/ कुछ शब्द हैं/ काली स्याही में सफेद पृष्ठभूमि पर : मैं पढ़ती हूँ -/ आपके स्वप्नों को हम पूरा करते हैं/ हमारे स्वप्नों को कौन पूरा करेगा ?[16] सुधा जैन ने भी 'जायें कहाँ' कविता में इसी चिंता को प्रकट किया है :

इतनी बड़ी धरती/ यह फैला आकाश/ कहीं नहीं जगह हम को/ बार-बार बनाते/ घोंसला/ बार-बार उजाड़ देते/ शिकारी/ जाये कहाँ ? इस संसार में/ क्यों नहीं कोई ठौर/ हमारे लिए।[17]

निर्मला पुतुल की 'ढेपचा के बाबू' कविता में बेरोजगारी और गरीबी की मार झेलती स्त्री को देख सकते हैं। कवयित्री का बेरोजगारी और गरीबी की मार झेलती स्त्री के मुँह से यह कहलवाना इस का प्रमाण है :

इधर काम-काज भी नहीं मिलता आजकल/ जो मेहनत-मजूरी कर घर चलाऊँ/ दोना-पत्तल भी नहीं बिकता/ और न ही लेता है कोई चटाई/ झाड़ू, पंखा, दातुन का भी बाजार नहीं रहा अब।[18]

आज विश्व भर के बाज़ारों में अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ सक्रिय हैं। अगर बात भारत की हो तो कहा जा सकता है कि भारत ऐसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए सबसे बड़ा बाजार है। ये कंपनियाँ विदेशी वस्तुओं के प्रति बढ़ता मोह और नए-नए उत्पादों के प्रति आकर्षित होते उपभोक्ताओं पर कब्जा कर चुकी हैं या कह सकते हैं कि देश इनकी गिरफ्त में आ चुका है। ऐसे में जहाँ दोना-पत्तल, झाड़ू, पंखा, दातुन के बाज़ार का धीरे-धीरे लुप्त होना स्वाभाविक है वहाँ बेरोजगारी और गरीबी को बढ़ने से रोकना मुश्किल है। गरीब आदमी की विवशता का यथार्थ चित्रण किया है। गरीब आदमी की विवशता दर्शाती ये पंक्तियाँ देखिए :

अभी भी एक दिन की मजूरी की जगह/ पाँच टके सैंकड़ा में ही ढुलवाता है। फिर छह-सात सौ से ज्यादा तो/ ढो भी नहीं पाती हूँ दिन भर में।[19]

कम पैसे में काम करने को मजबूर है। गरीब आदमी अपनी इच्छाएँ पूरी नहीं कर पाता, इच्छाएँ तो दूर की बात है वह अपनी जरूरतें भी पूरी नहीं कर पाता। गरीब व्यक्ति की आर्थिक स्थिति आज बड़ी शोचनीय है। उसके लिए पारिवारिक दायित्व का बोझ अपनी कमाई से निभा पाना मुश्किल है। गरीब परिवार की बेबसी का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है। मेहनत करने के बाद भी परिवार को भरण-पोषण में असमर्थ पाने की पीड़ा उसमें साफ झलकती है।

रिश्वतखोरी ने आज सभी कार्यों का चक्का जाम कर दिया है। गरीब व्यक्ति सब जगह विवश है। सरकारी नीतियाँ जन सामान्य के लिए मृग मरीचिका है। देश के आर्थिक विकास के लिए अनेक योजनाओं को लागू करने के लिए करोड़ों रुपये खर्च किये गये; परंतु इनका फायदा वर्ग-विशेष तक ही सीमित होकर रह गया, आम जनता तक इसका फायदा पहुँचता नहीं दिखाई देता। रिश्वतखोरी के कारण इन का फायदा संबंधित योजनाओं के नेताओं, अफसरों आदि की जेबों में समा गया। रिश्वतखोरी आज आम बात हो गई है। रिश्वत से सब कुछ हो रहा है। बिना इस के कोई काम करना मुश्किल दिखाई देता है। निर्मला पुतुल ने 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' कविता पुस्तक में 'ढेपचा के बाबू' कविता में इस से रू-ब-रू करवाया है। गरीब अपने सिर पर छत के बारे में भी बिना इस के नहीं सोच सकता। उसका घर सिर ढकने के लायक नहीं है, बरसात में चूता है। गिरने के कागार पर है। इंदिरा आवास के लिए दौड़-भाग करने पर भी कुछ परिणाम अभी तक सामने नहीं आया। घूस किस कदर व्याप्त है, इन पंक्तियों से इस की पुष्टि हो जाती है, ''पंचायत सेवक को मुर्गा भी दिया/ प्रधान को भी दिया पचास टका/ पर अभी तक कुछ नहीं हुआ/ पूरा डेढ़ साल हो गया।''[20]

नेताशाही और अफसरशाही की मिली-जुली साँठ-गाँठ से व्यापक स्तर पर देश में आर्थिक अनाचार हुआ है। गरीबों की समस्याएँ कम होने के स्थान पर दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गयी, दूसरी तरफ अमीर लोगों की करोड़ों रुपया स्विस बैंक में जमा

होता जा रहा है। भारत गरीब है, लेकिन 'भारत देश कभी गरीब नहीं रहा।' ये कहना है, स्विस बैंक के डायरेक्टर का। उन्होंने कहा- भारत का लगभग 280 लाख करोड़ रुपये उनके स्विस बैंक में जमा है। ये रकम इतनी है कि भारत के आने वाले 30 सालों का बजट बिना टैक्स के बनाया जा सकता है। या यूँ कहें कि 60 करोड़ रोजगार के अवसर दिये जा सकते हैं। भारत के किसी भी गाँव से दिल्ली तक 4 लेन रोड़ बनायी जा सकती है। या 500 से ज्यादा सामाजिक प्रोजेक्ट तैयार किये जा सकते हें। यह रकम इतनी ज्यादा है कि अगर हर भारतीय को 2000 रुपये हर महीने भी दिये जाये तो किसी वर्ल्ड बैंक से लोन लेने की जरूरत नहीं है। जरा सोचिये, हमारे भ्रष्ट राजनेताओं और नौकरशाहों ने कैसे देश को लूटा है और यह लूट का सिलसिला अभी तक जारी है। अंग्रेजों ने हमारे भारत पर 200 साल राज करके एक लाख करोड़ लूटा, मगर आज़ादी के 64 सालों में हमारे भ्रष्टाचारियों ने 280 लाख करोड़। हर साल में 4.37 लाख करोड़ या हर महीने 36 हज़ार करोड़ भारतीय मुद्रा स्विस बैंक में भ्रष्ट लोगों द्वारा जमा करवाई गई।[21] आर्थिक स्थिति कितनी भयंकर है। इस आर्थिक विषमता को देखते हुए सुधा जैन का 'आज़ादी के साठ साल' कविता में यह कहना सही है, 'आज़ादी के साठ साल! आज़ादी के ठेकेदार/ हो गये ऊपर तक मालामाल। .....पर सड़कों पर/ घूम रहे भिखारी/ ले भिक्षा का थाल।'[22] धन, जीवन की महत्त्वपूर्ण धुरी है। इस का बंटवारा असमान अवस्था में होने पर ही आर्थिक विषमता तथा धनी-निर्धन वर्गों का जन्म होता है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता ने तथाकथित आर्थिक विकास, वैषम्य, योजनाओं और कार्यक्रमों की निरर्थकता, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, बेरोजगारी, भुखमरी आदि से संबंधित अनेक चित्र प्रस्तुत कर आर्थिक विषमता पर गहरा दृष्टिपात किया है।

संदर्भ संकेत

[1]उदय प्रकाश- एक भाषा हुआ करती है, पृष्ठ संख्या 36

[2]वही, पृष्ठ संख्या 13

[3]विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- फिर भी कुछ बचा रहेगा, पृष्ठ संख्या 18-19

[4]वही, पृष्ठ संख्या 19

[5]किरण अग्रवाल- रूकावट के लिए खेद है, पृष्ठ संख्या 77

[6]वही, पृष्ठ संख्या 78

[7]निर्मला गर्ग- सफर के लिए रसद, पृष्ठ संख्या 37

[8]वही, पृष्ठ संख्या 33

[9]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृष्ठ संख्या 12

[10]उदय प्रकाश- एक भाषा हुआ करती है, पृष्ठ संख्या 35

[11]कुमार कृष्ण- पहाड़ पर नदियों के घर, पृष्ठ संख्या 16

[12]वही, पृष्ठ संख्या 14

[13]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृष्ठ संख्या 43

[14]उदय प्रकाश- एक भाषा हुआ करती है, पृष्ठ संख्या 13-14

[15]वही, पृष्ठ संख्या 15

[16]निर्मला गर्ग- सफर के लिए रसद, पृष्ठ संख्या 34

[17]सुभाष रस्तोगी (सं.)- सुधा जैन की श्रेष्ठ कविताएँ, पृष्ठ संख्या 136

[18]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृष्ठ संख्या 44

[19]वही, पृष्ठ संख्या 45

[20]वही, पृष्ठ संख्या 43-44

[21]प्रतिमा यादव- 'देश को खोखला करता भ्रष्टाचार, वीरेन्द्र सिंह यादव (सं0), भ्रष्टाचार का मनोविज्ञान : कुछ अक्स, कुछ अंदेशे, पृष्ठ संख्या 305-306

[22]सुभाष रस्तोगी (सं.), सुधा जैन की श्रेष्ठ कविताएँ, पृष्ठ संख्या 143-144

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,19-22
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 02 मार्च 2015

समकालीन प्रमुख रचनाकारों की मूल्य-दृष्टि और प्रसाद : एक विवेचन

डॉ. अंशुमाला मिश्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ *समकालीन प्रमुख रचनाकारों की मूल्य-दृष्टि और प्रसाद : एक विवेचन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंशुमाला मिश्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

जयशंकर प्रसाद के समकालीन रचनाकारों में निराला, पंत, महादेवी और प्रेमचंद का नाम बड़े ही सम्मान के साथ लिया जाता है, इन्होंने मानव के अन्तस्तल में सूक्ष्म भावों, विचारों कल्पनाओं को लाक्षणिक एवं व्यंजना आदि के द्वारा एक नया रूप प्रदान किया है। इसे निश्चित रूप से मानव को सम्पूर्ण करने वाले बिम्ब विश्व में एक नहीं कहा जा सकता है। देश और काल का प्रभाव उनकी पद्धतियों पर अवश्य पड़ता है, किन्तु आत्मीयता वही रहती है। इस रूप में इन रचनाकारों के साहित्य में निहित मानव-मूल्यों की विवेचना कम महत्व नहीं रखती।

प्रसाद समर्थ एवं युगप्रवर्तक साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के स्वर्णिम अतीत को उजागर कर हमारे गौरव अतीत का दिव्य दर्शन कराते हुये भिन्न-भिन्न मानवीय मूल्यों की व्याख्या और उनकी प्रस्तुति करने का प्रयत्न किया है।

आचार्य नंददुलारे बाजपेयी इस सम्बन्ध में लिखते हैं, "प्रसाद जी एक नये साहित्यिक युग के निर्माता ही नहीं, एक नई रचनाशैली और नब्य दर्शन के उद्भावक भी हैं। उनमें अपने युग की प्रगतिशीलता प्रचूर मात्रा में विद्यमान है। वे विधायक कलाकार हैं। सभी साहित्यकारों की भांति उन्होंने भी अपने युग की प्रगतिशील शक्तियों को अभिव्यक्ति दी। सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान सदैव निम्न स्तरों से होते हैं। अत: प्रसादजी ने बहिष्कृतों, अपाहिजों और विशेषकर दलितों का साथ दिया। प्रसादजी केवल भावुकता में डूबने वाले व्यक्ति नहीं थे, वे सजग द्रष्टा, लक्ष्य और उपाय निरुपक स्मृतिकार भी थे। कलाकार की हैसियत से उन्होंने उदात्त और शक्तिशाली भावनाओं तथा जीवनमय चरित्रों का निर्माण किया है। प्रात:काल स्वच्छन्द वायु की भांति, प्रथम यौवन की मधुर कल्पना की भांति उन्होंने साहित्य में अपना आगम बनाया और क्रमश: गहनतर और उच्चतर भूमि पर पहुँचते गये।"[1]

* वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग जगत तारन महिला महाविद्यालय [सम्बद्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय] इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

मानव जीवन की छोटी-छोटी समस्याओं का चित्रण, साधारण उत्थान पतन, भावों का आरोह-अवरोह स्थितियों का वैचित्र्य दिखा सकना, किसी रचनाकार की प्राथमिक सफलता कही जा सकती है; किन्तु जीवन की सम्पूर्णता को ग्रहण कर उसमें उत्पन्न अनेकानेक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक समस्याओं को अंकित कर व्यक्ति, देश और जाति के घेरे से मुक्त होकर मानव जीवन के विस्तृत फलक पर होने वाले अनेक घातों, प्रतिघातों को उद्घाटित करते हुये विस्तृत जीवन दशाओं एवं समस्याओं का उचित समाधान प्रस्तुत करते हुये जो साहित्यकार उन्हें अपनी कला में जितना ही अधिक सजीव रख सकेगा उसी अनुपात में वह सफल और मानवीय कहा जायेगा।

प्रसाद और निराला दोनों ही समकालीन रचनाकार हैं लेकिन दोनों की कथात्मक मानसिकता में विभेद है। निराला जी ने दलित शोषित समाज की परिस्थिति तथा व्यक्तित्व के विश्लेषण में अपनी अनुभूति और संवेदना का सहारा लिया है और अपने साहित्य के माध्यम से समाज की विभिन्न मान्यताओं, प्रथाओं, कुरीतियों आदि पर तीव्र व्यंग्य किया है। उन्होंने इति वृत्तात्मक और व्यंग्य प्रधान शौली में कहानियां भी लिखी हैं, फिर भी निराला जी ने शैली और शिल्प की अपेक्षा कहानियों के आन्तरिक पक्ष की ओर विशेष ध्यान दिया है। निराला समस्याओं से सीधे संघर्ष करते हैं जबकि प्रसाद दार्शनिक एवं स्थायी हल प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि प्रसाद की तुलना में निराला ने जन सामान्य जीवन को अधिक निकट से देखा है फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि जीवन की मार्मिक अनुभूतियों और सूक्ष्म भाव ग्रंथियों से प्रसाद अपरिचित रहे हैं।

यहाँ तक कि कुछ लोगों का मत है कि निराला, प्रसाद से कहीं अच्छी तरह समाज की समस्याओं का हल प्रस्तुत किये हैं किंतु ऐसा कहकर प्रसाद के साथ उन्होंने अन्याय किया है। प्रसाद ने भी अपने साहित्य में सूक्ष्म मानवीय अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है। "कंकाल" के नग्न यथार्थ से ज्यादा और क्या लिख जा सकता है? "दुखिया" "भिखारिन", "प्रतिध्वनि" और "देवदासी" जैसी कहानियों में भी प्रसाद की सूक्ष्म अनुभूति का परिचय मिलता है।

वस्तुत: प्रसाद, निराला और पंत मानव चेतना के रचनाकार हैं, और इस क्षेत्र में अलग-अलग उपलब्धि प्राप्त किये हैं। पंत का भी मानववादी चित्रण व्यापक है, पर उनकी रचनाओं को देखने से एक बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि कहीं-कहीं उनका आरोपित समाजदर्शन अधिक मुखर हो उठा है। मानवतावादी दृष्टि प्रसाद के समूचे अस्तित्व के साथ प्रखर हुई है। उनकी अनुभूति की सत्यता और सजगता में, तथा भावों के सूक्ष्म निदर्शन में पाठक को हिला देने की क्षमता है। उनके जीवन का सत्य सम्पूर्ण मानवता का सत्य बन चुका है।

निराला ने आजीवन कभी संघर्ष से मुख नहीं मोड़ा वेउस धातु के बने थे जो झुकने से पहले टूट जाना कबूल करती है। उन्होंने निरन्तर कष्ट सकते हुये झंझावातों का चित्रण अपनी कहानियों में किया है, "एड़ी चोटी का पसीना एक करके मुश्किल से भर पेट खाने को पाता है, लगान चुकाता है, भिक्षुक को भीख देता है और फसल न होने पर जमींदार के कोड़े सहता है। कभी-कभी उन्हीं की कृपा से कचहरी जा वैरिस्टर साहब को भी कुछ दे आता है। जमींदार, पुलिस, कचहरी, समाज सभी जगह वह नीच अधम, मनुष्य की पदवी से रहित ठोकर खाने वाला है? कोई देख न ले, और रोने का मतलब और न समझे इसलिये खुलकर नहीं रोता। एकांत में ईश्वर को पुकार, शून्य की ओर देख दु:ख के आंसू पीकर रह जाता है।[2]

गांव की मूल प्रकृति, खुली धूप, ताजी हवा और खड़ी फसल के साथ-साथ अभावग्रस्त किसान, सड़ी-गली रूढ़ियों का दास, ग्रामीण समाज और छोटी जाति वालों पर नृशंस अत्याचार निराला की कहानियों में गांव की तस्वीर इसी परिवेश में उभरी है। निराला के कथा साहित्य में अधिकतर पात्र मध्यम वर्गीय हैं।

उनकी कहानियों में अर्थ, कमला, कला की रूपरेखा "क्या देखा", आदि प्रसिद्ध है, परन्तु "श्यामा" में गरीब किसानों को धनी किसानों के द्वारा ही दुर्गति करते दिखाया गया है। "बंकिम" द्वारा सहानुभूति के दो बोल बोलने पर "सुधुआ" अपनी दशा का जिस ढंग से वर्णन करता है उससे छोटे किसानों की करुण स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत हो जाता है, "महाराज ने तीन बीघे खेत दिये थे। मैंने कई साल तक खेतों को खूब बनाया खाद छोड़ी जब खेत कुछ देने लगे तब पर साल इन्होंने बेदखल कर दिया, पहले इजाफा लगान, बीघा

पीछे पांच रूपया मांगते थे। अपने पास इतना दम न था, खेत छोड़ दिया पर किसान कहाँ जाय क्या खाया?[3] "राजा साहब को ठेंगा दिखाया" कहानी में विषमता का ही रूप प्रस्तुत किया गया है। एक तरफ राजा साहब सुन्दर परिधानों में सुन्दर बाग बगीचों में अपने महतरों से सलामी लेते हैं, तो दूसरी तरफ उनकी प्रजा किसी तरह दिन काटती है।

निराला ने अपने कथा-साहित्य में स्त्रियों की दुर्दशा के प्रति जिस ढंग से सोचा है वह एक जागरुक एवं प्रगतिशील लेखक ही कर सकता है निराला एक सजग एवं चिंतनशील लेखक होने के नाते... बार-बार अपने कथा-साहित्य में विधवा का जिक्र करते हैं और उनकी विधवा अत्याचार के गहने अंधकार से निकल कर नये सूरज का दर्शन कराती है।

निराला के कथा-साहित्य में अत्याचार की चक्की में पिस रही निचली जातियों की स्त्रियाँ भी क्रांतिकारी चरित्र के साथ हमारे सामने आती है। "कमला" कहानी में समाज द्वारा सताई कमला की हालत सुनकर वेदवती ललकारती है, "तुम लोग कमजोर हो, किस्मत को कोसती हो, मैं होती तो चपत का जबाव दूने कस की चपत कस कर देती। उन्हीं की तरह अपना भी दूसरा विवाह साथ-साथ करती, ऊपर न्योता भेजती आइये जनावे मन। मेरे शौहर से मुलाकात कर जाइये तुम्हीं लोगों ने अपने सिर स्त्रियों का अपमान उठा रखा है।[4]

इस प्रकार निराला सच्चे अर्थों में मानवीय कथाकार है।

प्रसाद एक सफल रचनाकार के साथ-साथ चिन्तनशील व्यक्ति थे। अत: "कंकाल" में प्रसाद संसार के संघर्ष से जूझने एवं समस्त मानवता का उत्थान करने की प्रेरणा देते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं, "तस्मान्नो द्विजते लोको लोकान्नो द्विजते च य:"[5] अर्थात् जो लोक से न घबराये, और जिनसे लोक न उद्विग्न हो वही पुरुषोत्तम का प्रिय मानव है, जो सृष्टि को सफल बनाता है।

प्रसाद के समकालीन प्रख्यात साहित्य स्रष्टा पंत के साहित्य में आदर्शवादी भावना निरन्तर प्रबल होती गयी है यह आदर्शवादी भावना ही परिवर्तन शीर्षक कविता में "सर्ववाद" का रूप ग्रहण करती हुई अन्त में अरविन्द दर्शन की ओर उन्मुख हो गयी। पंत जी "त्रिमिर त्रास" को दूर करना चाहते हैं, किन्तु प्रकृति-प्रेम का ठोस यथार्थ जीवन के प्रति आसक्ति की सीमा बन जाता है। त्यागना भी नहीं चाहता। वास्तव में हृदय और बुद्धि के विरोध की समस्या छायावादी युग में बड़ी गहराई से जुड़ी हुई थी, और उस युग के सभी रचनाकारों ने उसके समन्वय की बात की है।

युगीन आवश्यकताओं को देखते हुये पंत जैसे प्रबल छायावादी विचारों के कवि छायावाद की भावभूमि छोड़कर "युगान्त" की घोषणा की "द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र" की कामना और नव निर्माण की ओर अग्रसर हुये। युगान्त काव्य संग्रह में जीवन की वास्तविकता है, एक नये युग के आगमन की कामना है तथा प्राचीन मान्यताओं एवं रूढ़ियों पर कुठाराघात है। युगवाणी में मार्क्स के जीवन का प्रभाव बढ़ता हुआ दिखाई देता है नव मानवता के विकास के लिये कवि संस्कृति का बाह्य समन्वय नहीं आन्तरिक समन्वय चाहता है, "वाह्य नहीं आन्तरिक साम्य/ जीवों से मानव को प्रकाम्य/ मानव को आदर्श चाहिये/ संस्कृति आत्मोत्कर्ष चाहिये।"[6]

जहाँ प्रसाद और निराला ने समाज की रूढ़ियों, आडम्बरों एवं वर्णव्यवस्था आदि दोषों पर प्रहार कर मानव को उनसे मुक्त करने का प्रयास किया है वहाँ पंत भविष्य के प्रति बहुत आश्वस्त दिखाई पड़ते हैं। वे वर्तमान जीवन की विसंगतियों से संघर्ष करने की अपेक्षा भविष्यमात्र की कल्पना में जीने वाले रचनाकार है। वे भावी मानवता के लिये आश्वस्त हैं। उनकी कल्पना में भावी मानवता का जन्म हो चुका है। आश्चर्य है कि जहां निराला "काले कारनामें" जैसी कथायें लिख रहे थे वहीं प्रसाद "कंकाल" तथा "तितली" के माध्यम से नर कंकाल की दुर्गति को उपस्थित कर रहे थे तथा पंत कल्पना के सहारे नवीन मानवता के अभ्युदय का दिवा स्वप्न देख रहे थे।

महादेवी वर्मा की रचनायें भी मानवीय संवेदनाओं से ओत प्रोत हैं। उन्होंने अपने "अतीत जीवन की झांकियां" में अभावग्रस्त भर्त्सनाओं के शिकार कुम्हार, कुजड़े तथा पुरुष की कामुकता के चंगुल में जकड़ी नारी का निराशायुक्त

जीवन एवं व्यथापूर्ण मानसिक स्थिति का भावपूर्ण चित्रण किया है। इसमें कहीं उनका हृदय करुणा से सिक्त सहानुभूति एवं वेदना से कराह रहा है, तो कहीं, आक्रोश, क्षोभ एवं टीस से तड़प उठा है। महदेवी वर्मा की "शृंखला की कड़ियां में व्यक्त, आक्रोश का रूप संस्मरण में संवेदना दया का रूप धारण कर गया है। आक्रोश समाज के प्रति संवेदना उन करुणापूर्ण मानव के प्रति।

महादेवी ने बड़ी सूक्ष्मता और संवेदना के साथ पीड़ित एवं उपेक्षित व्यक्तियों की बेगानगी, विलगाव, अभाव एवं परवशता का चित्रण किया है। समाज के तिस्कृत लोगों को देखकर उनका हृदय विघल जाता है और ममतामयी मां का प्यार आंखों से छलक जाता है। उनकी स्मृति की रेखायें, अतीत के चलचित्र और पथ के साथी के पात्र, ऐतिहासिक न होकर सामान्य जन जीवन के एवं समाज की धूप-छांह में पले मानव है; साथ ही सभी पात्र अत्याचार शोषण तथा उत्पीड़न के शिकार हैं। इन सभी पात्रों में निम्न वर्गीय और निम्न मध्यमवर्गीय चरित्रों की अधिकता है। स्मृति की रेखायें की वृद्ध महिला चीनी फेरीवाला अतीत के चलचित्र मृत्युराम समाज द्वारा प्रताड़ित, बाल विधवा, विमाता के दुर्व्यवहार से दु:खी.....आदि महिला, ऐसे चरित्र हैं जो महादेवी की करुणा से सिक्त होकर साहित्य की अमूल्य निधि बन गये हैं तथा मानवता और उसके मूल्य को आन्दोलित कर गये हैं....

"यदि ये स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि बर्बरों ने हमारा नारीत्व [पत्नीत्व] सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार नहीं देगी तो इनकी कठिनाइयां तुरन्त सुलझ जायें।"[7] यहां महादेवी वर्मा का विद्रोही रुप दिखाई देता है। उन्होंने उपेक्षित स्त्रियों, अवैध संतानों की माताओं और विधवाओं के लिये मानवीय सहानुभूति प्रगट की है, और उनके विकास हेतु प्रयत्न किया है। मानव की कुत्सित वासना की शिकार वेश्याओं की चीख के प्रति वे भी सजग हैं, "इन स्त्रियों ने जिन्हें गर्वित समाज पतित के नाम से सम्बोधित करता है, पुरुष की वासना के वेदी पर, किसी ने विचार नहीं किया। पुरुष की बर्बरता एवं लोलुपता पर बलि होने वाले युद्ध वीरों के चाहे स्मारक बनाये जायें, पुरुष की अधिकार भावना को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये प्रज्ज्वलित चिता पर क्षणभर में जल मिटने वाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित रह सके परन्तु पुरुष की कभी न बुझने वाली वासनाग्नि में हंसते-हंसते अपने जीवन को तिल-तिल जलाने वाली इन रमणियों को मनुष्य ने कभी दो बूंद आंसू पाने का अधिकारी भी नहीं समझा?[8]

स्रोत

[1]जयशंकर प्रसाद -आचार्य नंददुलारे बाजपेयी, पृष्ठ संख्या 2
[2]अलका : निराला ग्रंथावली, भाग-2, पृष्ठ संख्या 177-178
[3]निराला ग्रंथावली, भाग-2 [श्यामा], पृष्ठ संख्या 127
[4]निराला ग्रंथावली, भाग-3, पृष्ठ संख्या 141
[5]कंकाल -प्रसाद, पृष्ठ संख्या 110
[6]मार्क्स के प्रति -पंत, चिदम्बरा, पृष्ठ संख्या 49
[7]महादेवी वर्मा -अतीत के चलचित्र, पृष्ठ संख्या 51
[8]शृंखला की कड़ियां -महादेवी वर्मा, पृष्ठ संख्या 113

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,23-27
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 जनवरी 2015

भारतीय इतिहास में नारी

डॉ. जयन्ती सोनवानी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारतीय इतिहास में नारी* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *जयन्ती सोनवानी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

शोधपत्र के उद्देश्य

1. इतिहास में नारियों की क्या स्थिति थी? ज्ञात करना।
2. नारियों की खराब स्थिति के लिए जिम्मेदार कारकों को खोजना।
3. इतिहास की सबल नारियों के जीवन इतिहास को जानना एवं उनके जीवन इतिहास को वर्तमान नारी समाज को प्रेरणा हेतु प्रस्तुत करना।
4. नारियों को कैंसे सबल बनाया जाए, उन उपायों को खोजना।

प्रस्तुत शोधपत्र में अपनाई गई विधि

प्रस्तुत शोधपत्र में ऐतिहासिक एवं वर्णानात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

आज के कुछ बुद्धिजीवि नारी की अपेक्षा पुरुष को श्रेष्ठ घोषित मानते हैं। वे यह तर्क देते हैं कि, पुरुषों को ईश्वर ने श्रेष्ठ बनाया है तथा शरीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक दृष्टि से भी पुरुष नारी की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। वे अपनी मान्यताओं को बल देने के लिए शास्त्रों एवं परम्पराओं की दुहाई दिया करते हैं। इन बुद्धिवादियों की भ्रमपूर्ण मान्यताएँ आज समाज पर इस कदर हावी है कि, नारी को सर्वत्र उपेक्षा व तिरस्कार का सामना करना पड़ रहा है। पुत्र के जन्म पर खुशियाँ मनाई जाती हैं। जबकि पुत्री के जन्म पर शोक व्यक्त किया जाता है। कई परिवारों में आज भी विज्ञान व तकनीकि के युग के बावजूद पुत्री की माँ को प्रताड़ित किया जाता है। पुत्रियों की हत्या कर दी जाती है। उच्च शिक्षित समाज में भी पुत्रियों को

* सहायक प्राध्यापक (स.शा.), शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय [बरेली] रायसेन (मध्य प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

गर्भ में ही मार दिया जाता है। पुत्रियों के साथ यह भेद-भाव अमीर-गरीब, ग्रामीण-नगरीय समाजों में, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि सभी वर्णों में, सभी जातियों में, हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई आदि सभी धार्मिक समुदायों में, सुसंस्कृत व असंस्कृत सभी समाजों में पाया जाता है। इतिहास प्रमाण है कि स्त्रियों के साथ यह भेद-भाव प्राचीन काल में नहीं था।

प्राचीन काल में नारियाँ हर क्षेत्र में पुरुषों की भाँति ही अपनी प्रखरता का ही परिचय देती थीं। पतंजलि ने भाला चलाने वाली महिलाओं का उल्लेख किया है। चन्द्रगुप्त की अंगरक्षक अमेजन महिलाओं का वर्णन यात्री मेगस्थनीज ने किया है। कौटिल्य ने महिला धनुर्धरों का वर्णन किया है। वेदों में ऐसी नारियों का उल्लेख है जो युद्ध में पैर कटने पर अश्वनी कुमारों से पुनः लोहे का पैर लगवाकर युद्ध स्थल में कूद पड़ी थीं। रावण के दुर्गम किले की रखवाली नारी ही करती थी। राजा दशरथ की प्राणरक्षा रानी कैकेई ने की थी। महाभारत काल में सुभद्रा की गणना महारथियों में की जाती थी।

न केवल शौर्य पराक्रम के क्षेत्र में वरन् ज्ञान के क्षेत्र में भी उन्हौंने अपने वर्चस्व का प्रमाण प्रस्तुत किया है। वाल्मीकि के आश्रम में आत्रेयी लव-कुश के साथ वेदाध्ययन किया करती थीं। भागवत में दाक्षायण की पुत्रियों का उल्लेख है जो दर्शन और धर्म के प्रश्नों में बहुत निपुण थीं। अगस्त्य ऋषि के सूक्त जो ऋग्वेद में संग्रहीत हैं, की रचना सह-धर्मणी भगवती लोपामुद्रा के सहयोग से ही जा सकी है। वेदों में घोषा, विश्वधारा, अपाला, जुहू, अदिति, इन्द्राणी, सरमा, उर्वशी, ममी, शाश्वती, सूर्या, सावित्री आदि मंत्रदृष्टा ऋषिकाएँ हुई हैं। राजा जनक की राजसभा में याज्ञवल्क्य के बाद गार्गी ही सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मविद् के रूप में मानी जाती थी। वाक् नाम की एक महिला ऋषि के सर्वाधिक सशक्त और प्राणवान सूक्तों की रचयिता थी। उसके द्वारा रचे अग्नि और सूर्य स्तवन करने वाले सूक्त ऋग्वेद में संग्रहीत हैं।

सेवा के क्षेत्र में भगिनी निवेदिता, नारी जागरण के क्षेत्र में अग्रदूत उर्मिला शास्त्री, स्वाधीनता की मशाल जलाने वाली नागारानी गिंडालु, शिक्षा के क्षेत्र में अलख जगाने वाली दुर्गादेवी देशमुख, महात्मा गाँधी की मानस पुत्री मीरा बहन, नारी उत्थान में समर्पित साधिका कमला देवी चट्टोपाध्याय, देशभक्ति का अलख जगाने वाली सुभद्रा कुमारी चौहान आदि के योगदान से कौन अनभिज्ञ है। राष्ट्रभक्ति और कर्त्तव्य परायणता के लिए समर्पित वीरांगना महारानी कर्मवती, रानी सारांधा, राजकुमारी रत्ना, रानी चैनम्मा, वीरांगना वेलु नाचियार, बेगम हजरत महल, क्रांतिकारी कामा इत्यादि के कर्मयोग से हमारा इतिहास गौरवान्वित रहा है।

रानी चेन्नम्मा (1824)

दक्षिण भारत में किन्नूर नाम का 358 (तीन सौ अट्ठावन) गाँवों का एक राज्य था। राज्य आत्मनिर्भर और शक्तिशाली था। यहाँ की जनता धर्म-परायण और राजनिष्ठ थी। यहाँ का व्यापारी वर्ग ईमानदार था। जिसके कारण राज्य का निरंतर विकास हो रहा था। सहकारिता और संगठन इस राज्य की विशेषता थी। यहाँ गाँवों में अखाड़े और व्यायाम शालाएँ चलती थीं। जहाँ पर युवाओं को शस्त्र शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार उस समय किन्नूर राज्य अपनी समृद्ध संस्कृति एवं सभ्यता के कारण बड़े-बड़े राज्यों में गिना जाता था। वीरता किन्नोर की परंपरा थी। इन्ही विशेषताओं के कारण अंग्रेज इस राज्य को अपने साम्राज्य विस्तार में सबसे अधिक बाधक मानते थे।

जब से हीरेमल शेट्टी नामक एक वीर पुरुष ने अपनी योग्यता तथा वीरता के बल पर किन्नूर राज्य की स्थापना की थी, तब से 250 वर्ष या 12 पीढ़ीयों से किन्नूर राज्य स्वाधीनता चला रहा था। किन्नूर के स्वाधीनता प्रिय देश भक्तों ने किसी भी राजा या नवाब को आँख उठाकर देखने नहीं दिया। किन्तु अंग्रेज उस समय संपूर्ण भारत में एकछत्र साम्राज्य का स्वप्न देख रहे थे।

उस समय मल्लसर्ज नाम का राजा, किन्नूर का शासक था। वे वृद्धावस्था के कारण राजकाज भली-भाँति संचालन करने में असमर्थ थे किन्तु उनकी रानी चेन्नम्मा बड़ी ही कुशल वीर तथा उत्साही महिला थी। गुरू सिदप्पा, मल्लप्पा शेट्टी और वैकंट रमन नाम की तीन मंत्रियों की एक परिषद् को साथ लेकर रानी चेन्नम्मा प्रशासन का सारा काम स्वयं चलाती थीं। राजा की शिथिलता के कारण उसने राज्य प्रबंध में कोई कमी या अव्यवस्था नहीं आने दी। वह सुबह तीन बजे उठकर नित्य कर्म, पूजा-पाठ से निवृत्त होकर प्रातः आठ से रात दस बजे तक राजकाज संचालन में लगी रहती थीं। रानी चेन्नम्मा चारों ओर दिन पर दिन बढ़ते हुए अंग्रेजों के खतरे को स्पष्ट देख रहीं थी। वे अपने राज्य को अंग्रेजों से बचाए रखने के लिए पूरी तैयारी

के साथ सदैव तत्पर रहती थीं। संपूर्ण जनता भी सावधान रहे इसके लिए भी उनका प्रयास जारी रहता था। रानी चेन्नम्मा ने राज्य की सीमाओं में तथा आरक्षित स्थानों पर चौकियां स्थापित करा दीं, जिसकी जाँच वे वेश बदलकर स्वयं करती थीं। ग्रामों में सुरक्षा दलों और नगरों में सेवा सैनिकों के संगठन बनाकर पूरे राज्य में सैनिक प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया गया। शास्त्रागारों तथा सेना की नई व्यवस्था कर दी गई।

शिक्षा संस्थाओं का उनने स्वयं निरीक्षण कर उनका पाठ्यक्रम निश्चित किया। और वीर भावनाओं से ओतप्रोत ज्वलंत राष्ट्रीयता का पाठ्यक्रम बढ़ा दिया। विद्यालयों से लेकर सैनिक छावनी तक में एक राष्ट्रीय प्रार्थना को अनिवार्य कर दिया गया जिसे अंत में सारे सैनिक तथा विद्यार्थी सामूहिक संकल्प के रूप में नित्य दोहराया करते थे। इस प्रकार रानी चेन्नम्मा अपनी सूजबूझ एवं दूरदृष्टि से सर्वाधिकार संपन्न शासिका मानी जाने लगीं। किन्तु अपने दो विश्वासघाती मंत्रियों के कारण दक्षिण में स्थित बेलगाँव और धारवाड़ के बीच बसा यह किन्नूर राज्य बर्बाद हो गया।

राजा मल्लसर्ज की मृत्यु हो गई। युवराज रूद्रसर्ज गद्दी पर आसीन हुए, किन्तु वे अस्वस्थ एवं अनुभव विहीन थे। उनकी इस कमजोरी का स्वार्थी मंत्रियों ने लाभ उठाया। इसी दौरान अंग्रेजों और मराठों के बीच भीषण संघर्ष हुआ। रानी चेन्नम्मा इस संघर्ष में मराठों को मदद करना चाहती थीं, किन्तु गद्दार मंत्रियों के कारण उक्त मदद का लाभ अंग्रेजों को मिला, और इस युद्ध में अंग्रेजों की विजय हुई एवं उनका वर्चस्व और बढ़ गया। इसी समय दुर्भाग्य से युवराज अत्यधिक बीमार हो गए, उनके जीने की उम्मीद समाप्त हो गई। संतान विहीन होने के कारण युवराज ने रानी चेन्नम्मा की सलाह से गुरूलिंग मल्लसर्ज नामक एक बालक को गोद ले लिया। गोद लेने के दूसरे दिन ही राजा रूद्रसर्ज की मृत्यु हो गई। इस घटना की सूचना दक्षिण की कम्पनी के प्रतिनिधि थैकरे को मिली। थैकरे ने किन्नूर राज्य को अवैध घोषित कर रानी चेन्नम्मा को आदेश भेजा कि, राज्य का सारा शासन-भार दीवान मल्लप्पा शेट्टी को सौंप दें। रानी चेन्नम्मा ने थैकरे के आदेश को मानने से इन्कार करते हुए आदेश वापस कर दिया। रानी के उक्त जबाव से थैकरे ने बौखलाकर कप्तान ब्लेक, कप्तान सिबिल लेफ्टीनेन्ट डेटन के नेतृत्व में एक बड़ी सेना किन्नूर घेरने के लिए भेज दी। रानी चेन्नम्मा ने नगर-नगर में युद्ध की घोषणा करा दी। अंग्रेज सैनिकों और किन्नूर सैनिको के बीच भयंकर संघर्ष हुआ। अंग्रेज सैनिक पराजित हुए किन्तु गद्दार और देशद्रोही शिवसप्पा (समर भण्डारी) के कारण कुछ अंग्रेज सैनिक किले में घुस गए और कब्जा कर लिया। रानी चेन्नम्मा को उनके सरदारों के साथ पकड़ लिया गया। तत्पश्चात् सरदारों को फाँसी दे दी गई, रानी चेन्नम्मा को परिवार सहित पकड़कर बंधक बनाकर कुछ दिनों तक रखा गया। बाद में सपरिवार को विष देकर मार दिया गया। इस प्रकार किन्नूर की वीरांगना रानी चेन्नम्मा वीरगति को प्राप्त हुईं। उनका यश आज भी विद्यमान है और आगे भी रहेगा। वह भारत की पुत्री रत्न रानी लक्ष्मीबाई से किसी भी प्रकार से कम न थी। अर्थात् उन्हीं के समान श्रद्धा और आदर की पात्र रानी चेन्नम्मा हैं।

रानी गिंडालू

नागारानी गिंडालू का जन्म बर्फीली चोटियों, चीड़ बरुंश के जंगलों से ढके नागालैण्ड में नागाओं के कोंबाई कबीले के पुरोहित के यहाँ हुआ था। उन दिनों पहाड़ी जनजातियों में शिक्षा का प्रचार नहीं था। अधिकांश बालक-बालिकाएँ बचपन से ही खेती-बाड़ी और अन्य आजीविका के लिए कठोर परिश्रम के साथ जुड़ जाते थे। गिंडालू की रुचि प्रारंभ से ही पढ़ने-लिखने में अधिक थी। अतः उनकी माता ने शिक्षा हेतु अपनी पुत्री को मिशन स्कूल में भर्ती करा दिया। क्रमशः कक्षाएँ पास करते हुए वे दसवीं कक्षा में पहुँच गईं।

गिंडालू का विद्यालय देखने में साधारण सा लगता था, पर वस्तुतः वह क्रांतिकारी शिक्षकों की कार्यस्थली थी। अंग्रेज सरकार के प्रति देशभर में व्याप्त विद्रोह की लहर को ये नागालैण्ड में एक तूफान के रूप में बदलकर स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते थे। इस विद्यालय के इन देशभक्त शिक्षकों ने विद्यार्थी वर्ग में अंग्रेजी शासन के प्रति घृणा की आग जला दी।

सन् 1931 ई. में सारे भारत में असहयोग आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। नागालैण्ड भी इससे अछूता नहीं रहा। एक दिन रानी गिंडालू की प्राधानाचार्या ने विद्यालय के समस्त छात्र/ छात्राओं को बेहद मार्मिक विचारों के साथ स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। प्राधानाचार्या की प्रेरणा से 16 वर्षीय लड़की गिंडालू

प्रेरित हुई तथा जीवनभर राष्ट्रीय कर्त्तव्य को निभाया। रानी गिंडालू ने सर्वप्रथम दस-पंद्रह सह-पाठियों का संगठन बनाया और अंग्रेजों के विरूद्ध आजीवन संघर्ष करने का संकल्प लिया। इन्होंने अपना कार्यक्षेत्र अपने विद्यालय को बनाया। विभिन्न गोष्ठियों और भाषणों से इन्होंने छात्रों में नूतन उत्तेजना भर दी। परिणाम स्वरूप रानी गिंडालू का संगठन अत्यंज व्यापक एवं मजबूत हो गया। इस आन्दोलन में अनेकों युवक-युवतियाँ सम्मिलित हो गये। इन बहादुर छात्र/ छात्राओं ने समस्त नागालैण्ड में घूम-घूमकर अशिक्षित लोगों को परतंत्रता का बोध कराया और अनेकों संगठन बनाए। नागाओं के अनेकों कबीले अंग्रेजी सत्ता के विरोध में उठ खड़े हुए। नागालैण्ड वासियों ने विदेशी वस्तुओं की होली जलाई और स्वदेशी सामग्री उपयोग में लाने का व्रत लिया। अंग्रेजों के विरोध में जगह-जगह जुलूस निकाले गए और अंग्रेजी झण्डों को जलाया गया। जनता सशत्र क्रांति की योजनाएँ बनाने लगी।

नागालैण्ड की जनजाग्रति का एवं जनक्रांति का सूत्राधार एक 16 वर्षीय किशोरी होने की सूचना अंग्रेज सरकार को मिली तो सरकार दंग रह गई। सरकार द्वारा रानी गिंडालू को उनके साथियों सहित पकड़ लिया गया और कठोर यातनाएँ दी गई। पुलिस ने निर्दयता पूर्वक अनेकों बस्तियाँ जला डाली और सैंकड़ों नागाओं की हत्या कर दी। रानी गिंडालू से सरकार इतनी भयभीत थी कि, उन्हे आजीवन कारावास की सजा दे दी। इस समाचार को सुनकर सारे देश में शोक छा गया। तत्कालीन नेताओं ने रानी गिंडालू की मुक्ति के लिए अनेकों प्रयास किए, पं. जवाहर लाल नेहरु ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में गिंडालू की मुक्ति का प्रस्ताव रखा। हरीपुरा कांग्रेस अधिवेशन में भी उनकी मुक्ति के प्रस्ताव रखे गए किन्तु अंग्रेज सरकार ने उन्हें मुक्त नहीं किया। उनसे अंग्रेज सरकार इतनी भयभीत थी कि, तत्कालीन वायसराय ने आसाम असेम्बली में रानी गिंडालू की मुक्ति विषयक् प्रश्न पूछे जाने पर प्रतिबंध लगा दिया था। रानी गिंडालू को कारावास में भीषण यातनाएँ दी गई। इन सबके बावजूद भी वे हतोत्साहित नहीं हुई और जेल के अपने अन्य साथियों में आशा और विश्वास की ज्योति जलाती रहीं।

अन्ततः 15 अगस्त 1947 को देश स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता के बाद भी नेहरु जी रानी गिंडालू की मुक्ति के लिए प्रयास करते रहे और परिणाम स्वरूप 19 जुलाई सन् 1949 ई. को रानी गिंडालू जेल से मुक्त हुई। उनके जीवन के 18 मूल्यवान् वर्ष जेल में व्यतीत हुए। उनकी मुक्ति का सारे देश में स्वागत किया गया। रानी गिंडलू स्वतंत्रता के पश्चात् भी देश की उन्नति में विविध प्रकार से योगदान देती रहीं। सरकार ने उनके सम्मान में उन्हे आजीवन पेंशन देनी प्रारंभ की परंतु इसे भी इन्होंने सेवा कार्यों में लगा दिया। नागालैण्ड की चहुमुखी प्रागति में रानी गिंडालू के योगदान को कदापि विस्मृत नहीं किया जा सकता।

श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख

श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख ने सन् 1933 ई. में आन्ध्र विश्वविद्यालय में प्रवेश हेतु आवेदन किया तो उन्हें वि.वि. में छात्राओं की आवास व्यवस्था नहीं होने के कारण उन्हें प्रवेश देने से मना कर दिया। इस घटना का दुर्गाबाई देशमुख पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने तुरंत महिला छात्रावास खोलने का विज्ञापन निकाला जिसके परिणाम स्वरूप विशाखपट्टनम में पढ़ने वाली बारह छात्राओं ने छात्रावास में रहने की अपनी सहमति जताई। इसके बाद दुर्गाबाई देशमुख ने स्वयं छात्रावासी छात्रा होते हुए महिला छात्रावास का सफलता पूर्वक संचालन किया। उस समय लड़कियों को परिवार से अलग रहकर पढ़ाना अनुचित माना जाता था, परंतु ऐसी विपरीत परिस्थितयों में दुर्गाबाई देशमुख ने शिक्षा के क्षेत्र में साहसपूर्ण कदम उठाया। बाद में यही दुर्गाबाई देशमुख विख्यात समाजसेवी बनीं। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने अविस्मरणीय योगदान दिया। शिक्षा के क्षेत्र में किये गये कार्यों के लिए उन्हें चतुर्थ नेहरु साक्षरता पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया।

दुर्गाबाई दक्षिण भारत में जन्मी थीं, जहाँ पर हिन्दी का सदैव विरोध हुआ करता था। ऐसी परिस्थितियों में भी संपूर्ण भारतीय समाज, संस्कृति एवं राष्ट्र को समझने के लिए हिन्दी का ज्ञान होना आवश्यक है, इस कमी का वह अनुभव करती थीं। इसी उद्देश्य से उन्होंने उपने पिता के वयोवृद्ध मित्र से हिन्दी के साथ-साथ अन्य विषयों को भी पढ़ा। शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्हें ऐसा आभास हुआ कि, अशिक्षा ही समाज की सारी समस्याओं की जड़ है। अतः महिलाओं को खराब स्थिति से उबारने का एक ही उपाय है - शिक्षा। इस प्रकार दुर्गाबाई ने शिक्षा के महत्व को समझकर निरक्षर महिलाओं को साक्षर करना प्रांरभ किया। इस कार्य को बड़े पैमाने पर संपन्न करने के लिए हिन्दी माध्यम का स्कूल खोला। सन् 1923 ई. में जब काकीनाड़ा

में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो उनके स्कूल की 500 (पाँच सौ) स्वयं सेविकाओं ने दुभाषिये (अनुवादक) का काम किया। स्वतंत्रता संग्राम सेनानी एवं राष्ट्रभक्तों ने दुर्गाबाई के इस कार्य की अत्यधिक प्रशंसा की।

दुर्गाबाई 13 वर्ष की छोटी आयु में ही स्वदेशी आंदोलन में कूद पड़ीं। अपनी माता के साथ घर-घर खादी बेचा करती थीं। नशाबंदी का प्रचार करती थीं। दुष्प्रवृत्तियों को छुड़ाने के लिए वो द्वार-द्वार जाकर इनसे होने वाले व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक हानियाँ बताती थीं, एवं लोगों से बुरी आदतें छोड़ने के लिए आग्रह करती थीं। इस प्रकार बालिका की तथ्यपूर्ण बातों से लोग प्रभावित होकर दुष्प्रवृत्तियाँ छोड़ने के लिए संकल्पित होते थे।

सन् 1930 ई. में जब श्री जयप्रकाश नारायण जी को स्वतंत्रता आंदोलन के प्रचार-प्रसार के दौरान जेल की सजा हुई, तो उन्होंने मद्रास में स्वाधीनता संग्राम का कार्य दुर्गाबाई की प्रतिभा, प्रखरता को देखकर सौंपा था, जिसे दुर्गाबाई ने कुशलता पूर्वक निभाया। नमक सत्याग्रह में भाग लेने के कारण दुर्गाबाई को एक वर्ष कठोर कारावास की सजा हुई, परंतु सजा उपरांत जेल से मुक्त होने के बाद दुर्गाबाई ने हिन्दुस्तान सेवादल नामक राष्ट्रीय संगठन की कर्मठ कार्यकर्ता बनकर स्वतंत्रता संग्राम में और अधिक सक्रिय हुईं जिसके परिणाम में उन्हे तीन वर्ष की जेल भोगनी पड़ी।

इस प्रकार दुर्गाबाई स्वतंत्रता संग्राम, नारी शिक्षा, नशा-उन्मूलन, जन-जाग्रति, राष्ट्रीय-एकता, हिन्दी भाषा प्रचार-प्रसार आदि कार्यों में तन-मन से समर्पित रहीं। दुर्गाबाई ने सन् 1942 ई. में आन्ध्र वि.वि. से कानून की परीक्षा उत्तीर्ण की। लॉ की डिग्री उपरांत उन्होंने वकालात का कार्य प्रारंभ किया। दुर्गाबाई देशमुख प्रथम महिला वकील थीं जिन्होंने हत्या के मुकदमें की पैरवी की। उनकी दूरदर्शिता राष्ट्रीय आंदोलन एवं राष्ट्रीय चिंतन के कारण उन्हे भारतीय संविधान सभा की सदस्या मनोनीत किया गया। भारतीय संविधान निर्माण में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। सन् 1950 ई. में उन्हे योजना आयोग का सदस्य बनाया गया।

उनका विवाह प्रथम केन्द्रीय वित्त मंत्री सी.डी. देशमुख के साथ हुआ। अपने पति के साथ दुर्गाबाई विदेश गईं, विदेश में महिलाओं की उच्च स्थिति से प्रभावित होकर, भारतीय महिलाओं की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया एवं भारतीय महिलाओं की दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए संकल्पित हुईं। वर्षों तक वो केन्द्रीय समाज कल्याण वोर्ड की अध्यक्षा तथा महिला शिक्षा की राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षा के रूप में कार्य करती रहीं। उन्होंने बच्चों की शिक्षा के बराबर प्रौढ़ों की शिक्षा पर भी बल दिया। प्रौढ़ शिक्षा संचालन के लिए कई संस्थाएं खुलवाईं।

श्रीमती दुर्गाबाई ने पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का सुंदर समन्वय करके निभाया। उनका सह व्यक्तित्व एवं कृतित्व नारी शक्ति को अपनी सामर्थ्य पहचानने व अपने पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों को निबाहने के लिए प्रेरित करता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथसूची

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य (2009)- *भारत की महान वीरांगनाएँ,* युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य (2010)- *सेवा धर्म की सिद्ध साधिकाएँ,* युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य (2005)- *महिला जाग्रति अभियान,* युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य (1993)- *नारी उत्थान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है,* युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य (2007)- *विश्व की महान नारियाँ,* भाग-2, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा

डॉ. एस.एल वरे (2007)- *भारतीय इतिहास में नारी,* कैलाश बुक सदन भोपाल

अखण्ड ज्याति मासिक पत्रिका, माह- अगस्त, सन 2007, पृष्ठ क्र. 27, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा

अखण्ड ज्याति मासिक पत्रिका, पृष्ठ क्र. 23, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा, माह- दिसम्बर, सन 2002

युग निर्माण योजना मासिक पत्रिका, पं.श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा, माह- सितम्बर सन 2007

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,28-30**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 20 जनवरी 2015

स्वामी विवेकानंद जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार

डॉ. मनीषा आमटे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *स्वामी विवेकानंद जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा आमटे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारतवर्ष की पुष्पों से भरी धरती पर कई विद्वान पुरूष अवतरित हुए, जिन्होंने भारत की संस्कृति को अक्षुण्य रखते हुए कई क्रान्तिकारी परिवर्तन किए, जिसने समाज को नई दिशा प्रदान की। स्वामी विवेकानंद उनमें से एक हैं जिन्होंने न केवल धर्म, संस्कृति, शिक्षा दर्शन, सामाजिक चिंतन आदि पर नवीन विचार प्रदान किए अपितु संपूर्ण विश्व को भारत की अमर संस्कृति से परिचित करवाया। अंध-विश्वास से जकड़े भारतीय समाज की कुप्रथाओं का विरोध करते हुए स्वामी जी का लक्ष्य युवा पीढ़ी थी जो इन परंपराओं के मकड़जाल में उलझकर भारतीय धर्म, संस्कृति एवं शिक्षा के वास्तविक अर्थों से अपरिचित हो चुकी थी। अतः युवा पीढ़ी को जागृत करने हेतु स्वामी विवेकानंद ने संदेश दिया व सोती भारत की संतानों को जगाया 'उत्तिष्ठत जागृत प्राप्त वरान्ति बोधत।''[1]

12 जनवरी 1863 को जन्मे स्वामी विवेकानंद पर प्राचीन भारतीय वेदांत का गहरा प्रभाव था। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली की आलोचना करते हुए स्वामी विवेकानंद यह स्पष्ट रूप से समझते थे कि उपयुक्त शिक्षा व्यवस्था का प्रबंध किए बिना देश का उत्थान नहीं हो सकता। उन्होंने स्पष्ट रूप से समझ लिया था कि अपने देश-वासियों की दीन-हीन दशा का प्रमुख कारण उपयुक्त शिक्षा का अभाव है। भारत की वर्तमान स्थिति की आयरलैण्ड से तुलना करते हुए दिखलाया कि किस प्रकार शिक्षा के अभाव में वहां के लोग दीन हीन दिखाई पड़ते थे, शिक्षा मिलने के बाद उनकी आँखें उठने लगीं और भय के चिह्न समाप्त हो गए।

स्वामी जी ने मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण बताया है। उनके विचार से शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता का विकास है। मनुष्य का निर्माण शिक्षा द्वारा ही होता है। संपूर्ण अध्ययनों का अन्तिम लक्ष्य मनुष्य का विकास करना ही है। स्वामी जी के अनुसार जिस अध्ययन द्वारा मनुष्य की संकल्प शक्ति का प्रभाव संयमित होकर प्रभावोत्पादक बन सके उसी का नाम शिक्षा है।

* अतिथि व्याख्याता, समाजशास्त्र विभाग, राज माता सिंधिया शासकीय कन्या महाविद्यालय छिंदवाड़ा (मध्य प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल) E-mail : sandeep.manisha22@rediffmail.com

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

स्वामी जी का कहना है, ''ज्ञान मनुष्य में स्वभाव सिद्ध है, कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता, सब अन्दर ही है। मनुष्य जो कुछ सीखता है, वह वास्तव में 'आविष्कार' करना ही है। 'आविष्कार' का अर्थ है- मनुष्य का अपनी अनन्त ज्ञानस्वरूप आत्मा के ऊपर से आवरण हटा लेना। हम कहते हैं न्यूटन ने गुरूत्वाकर्षण का आविष्कार किया है। तो क्या वह आविष्कार कहीं एक कोने में न्यूटन की राह देखते बैठा था? नहीं, वरन उसके मन में ही था। जब समय आया उसने उसे जान लिया। .....विश्व का असीम ज्ञान भण्डार स्वयं तुम्हारे मन में है। बाहरी संसार तो एक सुझाव, एक प्रेरक मात्र है, जो तुम्हें अपने मन का अध्ययन करने के लिए प्रेरित करता है।[2]

स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का सृजन करना है। मनुष्य सृजन से उनका तात्पर्य मनुष्य का सर्वपक्षीय शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक और संतुलित विकास करना। वे कहते हैं, ''शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत सी बातें इस तरह ठूँस दी जाएँ कि अन्तर्द्वन्द्व होने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर पचा न सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है।''[3]

पाठों को कंठस्थ करने के स्थान पर समझ कर पढ़ने पर उनका बल था। उन्होंने कहा भी है, ''यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।'' अर्थात् वह गधा जिसके ऊपर चन्दन की लकड़ियों का बोझ लाद दिया गया हो, बोझ की बात ही जान सकता है, चन्दन के मूल्य को वह नहीं समझ सकता।[4]

स्वामी जी शिक्षा को मात्र नौकरी प्राप्त करने का साधन बनाने के विरोधी थे। उनकी अदम्य इच्छा थी कि शिक्षा ऐसी हो जिसका उपयोग अधिकाधिक राष्ट्रहित में किया जाये। उनका कहना है, ''तुम्हारी शिक्षा का उद्देश्य क्या है? या तो क्लर्क बनना या एक दुष्ट वकील बनना और बहुत हुआ तो क्लर्की का ही दूसरा रूप एक डिप्टी मजिस्ट्रेट की नौकरी- यही न? इससे देश को क्या लाभ हुआ? एक बार आँखें खोलकर देख- सोना पैदा करने वाली भारत-भूमि में अन्न के लिए हाहाकार मचा है। तुम्हारी इस शिक्षा द्वारा उस न्यूनता की क्या पूर्ति हो सकेगी? कभी नहीं। पाश्चात्य विज्ञान की सहायता से जमीन खोदने में लग जा, अन्न की व्यवस्था कर-नौकरी करके नहीं- अपनी चेष्ठा द्वारा पाश्चात्य विज्ञान की सहायता से नित्य नवीन उपाय का आविष्कार करके।''[5]

स्वामी जी की शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को आत्मनिर्भर बनाना था। वे शिक्षा द्वारा मनुष्य को जीवन संघर्ष की तैयारी कराना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने तकनीकी प्रोद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था पर बल दिया।

स्वामी जी वर्तमान प्रचलित शिक्षा प्रणाली का खण्डन करते थे। उसके स्थान पर आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा का राष्ट्रीय रीति से राष्ट्रीय सिद्धांतों के आधार पर विस्तार के हिमायती थे। वे कहते हैं, ''सबसे पहले हमें अपनी जाति की आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षाभार ग्रहण करना होगा। .....जब तक तुम यह काम पूरा नहीं करते हो, तब तक तुम्हारी जाति का उद्धार होना असंभव है। जो शिक्षा तुम अभी पा रहे हो, उसमें कुछ अच्छा अंश भी है और बुराइयाँ बहुत हैं। इसीलिए ये बुराइयाँ उसके भले अंश को दबा देती हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि यह शिक्षा मनुष्य बनाने वाली नहीं कही जा सकती। यह शिक्षा केवल तथा संपूर्णतः निषेधात्मक है। निषेधात्मक शिक्षा मृत्यु से भी भयानक है।''[6]

स्वामी जी स्त्री शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। वे कहते हैं, ''भारतवर्ष में प्रतिशत केवल दस-बारह लोग ही शिक्षित हैं तो अनुमान होता है कि स्त्रियों में प्रतिशत एक भी शिक्षिता न होगी। यदि ऐसा न होता तो देश की ऐसी दुर्दशा क्यों होती?. ...स्मरण रहे कि सर्वसाधारण में और स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार हुए बिना उन्नति का कोई उपाय नहीं है।''[7]

स्वामी जी का व्यक्ति भेद के सिद्धांत में विश्वास था। इस विषय पर उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति में ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता होती है किंतु ग्रहण शक्ति एक जैसी नहीं होती। वे कहते हैं, ''यदि तुम किसी मनुष्य को शिक्षा ग्रहण करने में असमर्थ समझते हो, तब तो तुम्हें उसे और भी अधिक परिश्रम में सिखलाने का प्रयत्न करना चाहिए। उसे शिक्षा की और अधिक सुविधा देनी चाहिए, न की कम, ताकि वह अपनी बुद्धि का विकास कर सके और इस तरह सूक्ष्मतर विषयों और समस्याओं को समझने में समर्थ हो सके। अधिकारीवाद के इन समर्थकों ने इस महान सत्य की उपेक्षा कर दी कि मानवात्मा की क्षमता असीम है। प्रत्येक मनुष्य ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम है, यदि शिक्षा उसकी ग्रहण शक्ति के अनुसार दी जाए।''[8]

विवेकानन्द जी के शिक्षा संबंधी उपरोक्त विचारों का सिंहावलोकन कर उनके आधारभूत शैक्षणिक सिद्धांतो का निम्न रूप में संक्षेपण किया जा सकता है- ● धार्मिक शिक्षा, समन्वयवादी शिक्षा। ● चरित्र निर्माणकारी, मनुष्य निर्माणकारी तथा जीवन निर्माणकारी शिक्षा। ● आत्मनिर्भरता देने वाली शिक्षा। ● संपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करने वाली शिक्षा। ● व्यक्ति व समाज हित में समन्वयकारी शिक्षा। ● रूचि एवं बौद्धिकता के आधार पर शिक्षा। ● स्त्री शिक्षा का प्रसार। ● राष्ट्रहित प्रेरक शिक्षा।

संदर्भ

[1]तिवारी, डॉ. आभा- *''स्वामी विवेकानंद के शिक्षा संबंधी विचार'',* रचना अंक-106, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल पृष्ठ संख्या 24

[2]*http://pustak.org/name.php?brokkid=5909*

[3]*साभार : विवेकानंद साहित्य,* खंड-पंचम, पृष्ठ संख्या 195

[4]*साभार : विवेकानंद साहित्य,* खंड-पंचम, पृष्ठ संख्या 195

[5]*साभार : विवेकानंद साहित्य,* खंड-षष्ठ, पृष्ठ संख्या 155

[6]*साभार : विवेकानंद साहित्य,* खंड-पंचम, पृष्ठ संख्या 194

[7]*साभार : विवेकानंद साहित्य,* खंड-षष्ठ, पृष्ठ संख्या 37

[8]साभार : विवेकानंद साहित्य, खंड-एक, पृष्ठ संख्या 326

पत्रावली संख्या V-34564, पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,31-40
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 03 मार्च 2015

अयोध्या के साधू : सामाजिक एवं आर्थिक विवेचन

डॉ. सुधीर कुमार राय* एवं अरुण बहादुर सिंह**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *अयोध्या के साधू : सामाजिक एवं आर्थिक विवेचन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *सुधीर कुमार राय एवं अरुण बहादुर सिंह* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

सारांश

भारतीय साहित्य में अयोध्या का उल्लेख भारत के प्राचीनतम् नगर के रूप में आता है। ऐतिहासिक तथा साहित्यिक प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि अयोध्या एक प्राचीन नगरी है।

त्याग, धन एवं शक्ति के प्रति उदासीनता साधुओं की विशेषता रही है। साधू सांसारिक भोगों से जितना दूर होते हैं, लोगों द्वारा उतना ही पूज्य होते हैं एवं सद्गुणी समझे जाते हैं; पर आज मूल्य बदल रहे हैं। अत्याधुनिक महंगे साधनों का प्रयोग कर साधू भी गौरवान्वित महसूस करते हुए दिखाई दे रहे हैं। धन एवं वस्तुओं के प्रति उनका आकर्षण सांसारिक व्यक्तियों की तरह ही दिखायी दे रहा है।

प्रस्तुत शोध के माध्यम से वर्तमान परिदृश्य में अयोध्या के साधुओं का सामाजिक एवं आर्थिक विवेचन किया गया है। इस शोध पत्र को तैयार करने में मेरे शोध छात्र ने अपने अध्ययन क्रम में क्षेत्र कार्य द्वारा तथ्य एकत्रीकरण के साथ आंकड़ों के वर्गीकरण एवं सारणीयन में मेरा सहयोग किया है।

प्रस्तावना

सृष्टि के रहस्यों के प्रति जिज्ञासा हर समय विद्यमान रही है। इन्हीं जिज्ञासाओं एवं विश्वासों ने प्रवृत्तिमार्ग तथा निवृत्तिमार्ग को स्थापित किया। जिसमें संन्यास ने निवृत्ति मार्गी भावना का विकास किया। वैदिककालीन सभ्यता में जहाँ एक ओर ब्राह्मण धर्म प्रवृत्तिवादी एवं दैववादी दृष्टि लेकर चल रहा था वहीं दूसरी ओर 'मुनि' एवं 'श्रमण' निवृत्ति मार्ग का अवलम्बन कर अपनी योग साधना में रत थे। मुनियों ने प्रवृत्तिमूलक कर्मों को अपने लिए हेय तथा बन्धनात्मक मान लिया था। उन्होंने अपने हित के लिए ब्रह्मचर्य, तपस्या एवं योगादि निवृत्तिपरक क्रियाओं को ही उपादेय माना था। निवृत्तिमूलक जीवनदर्शन के प्रणेता हमारे

* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, उदय प्रताप स्वायत्तशासी कॉलेज वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत
** शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

मुनि, श्रमण एवं साधू संन्यासी ही रहे हैं। संन्यास त्याग पूर्ण जीवन का प्रतीक है। कर्म-सिद्धान्त भी त्याग की ही शिक्षा देता है। मैं और मेरा का परित्याग ही संन्यास का परम् लक्ष्य है। इस संकुचित परिधि से निकल कर ही व्यक्ति संन्यास के उच्च धरातल पर पहुँचकर लोक हित की चिन्ता करता है। यद्यपि वैदिक संहिताओं में संन्यास एवं संन्यासी शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता किन्तु इनके लिए मुनि, श्रमण, यति, वातरसना, पायावर, परिव्राजक, भिक्षु तथा साधू आदि शब्दों के प्रयोग हुए हैं, स्मृति एवं पुराणों के युग में चारों आश्रमों 'ब्रह्मचर्य', 'गृहस्थ' 'वानप्रस्थ' एवं संन्यास को मानव जीवन के चार सोपानों के रूप में स्वीकार किया गया है। चार आश्रमों में संन्यास की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस आश्रम में व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम से सीधे भी प्रवेश कर सकता है या गृहस्थ तथा वानप्रस्थ के सोपानों से होते हुए भी जीवन के अंतिम समय में पहुँच सकता था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि साधू संन्यासियों एवं परिव्राजकों का उदय समाज में बहुत पहले ही हो चुका था। धार्मिक शब्द के रूप में 'साधू' का प्रयोग आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण एवं उच्च धार्मिक मूल्यों को धारण करने वाले व्यक्ति के लिए किया जाता है। साधू वे हैं जो सामान्य मनुष्यों से श्रेष्ठ एवं मन, वचन एवं कर्म से (मनसावाचाकर्मणा) सभी प्राणियों का कल्याण चाहते हों।

साधू शब्द का प्रयोग संकुचित एवं विस्तृत दोनो अर्थों में होता है। संकुचित अर्थ में इसका प्रयोग उन मनुष्यों के लिए किया जाता है, जिन्होंने धर्मार्थ वैराग्य ग्रहण कर लिया हो एवं जो दान एवं भिक्षा से जीविका निर्वाह करते हों। विस्तृत अर्थ में साधु का तात्पर्य सभ्य व सुसंस्कृत होता है।

शोध कार्य के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए हम साधू का आशय उन व्यक्तियों से ले रहे हैं, जिन्होंने औपचारिक रूप से किसी सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण की हो। अपने सम्प्रदाय की परिपाटी के अनुसार वेषभूषा धार्मिक प्रतीकों को धारण करते हों एवं भिक्षाटन, दान, मन्दिर या मठ से प्राप्त आय से जीवन यापन करते हों।

संन्यास का सम्बन्ध व्यक्तिगत आचरण के अनुपालन तथा सिद्धान्त से है। संन्यास अपने व्यापक अर्थ में एक जटिल सम्प्रत्य है जिसके अन्तर्गत कुछ प्रकार के शारीरिक एवं भौतिक सुखों का त्याग धार्मिक अनुशासन एवं शारीरिक तथा मानसिक रूप से जीवन से विरक्ति शामिल है। यह सांसारिक जीवन के प्रति निष्क्रियता या विरक्ति एवं सांसारिक भोगों के त्याग को महत्त्व देता है। इसका व्यक्तिगत अनुपालन ही सन्यास का आदर्श रूप है। जब दो या दो से अधिक संन्यासी साथ-साथ रहते हैं तो संन्यासियों का आदर्श जीवन पूर्ण विरक्ति कुछ अंशों में नष्ट हो जाती है, उन्हें रहने के लिए स्थान की आवश्यकता पड़ती है और यही स्थान मठ-संगठन का निर्माण करते हैं। मठ सामाजिक संगठन का एक विशेष पहलू है। मठ संन्यासी जीवन के अनुरूप सामाजिक संगठन बनाने में अग्रसर रहते हैं। यहाँ जीवन जीने के कुछ नियम विकसित हो जाते हैं। संन्यासी जीवन जब विकसित होकर मठ संगठन का रूप लेता है तो एक ऐसे सामाजिक संगठन का निर्माण करता है जो सामाजिक सम्बन्धों एवं व्यक्तिगत आवश्यकताओं के निषेध एवं परित्याग पर बल देता है।

सांसारिक जीवन त्याग कर विरक्त हो जाने वाले लोग जब समूहबद्ध होकर जीवन व्यतीत करते हैं तो यह सिद्ध हो जाता है कि सामाजिक जीवन का पूर्ण त्याग सम्भव नहीं है। जब उनके लिए किसी न किसी निवास स्थान की आवश्यकता पड़ती है, वही स्थान 'मठ' जैसा रूप धारण कर लेता है, जहाँ उनके विरक्त सामाजिक जीवन को नियंत्रित करने के लिए कुछ नियमों के आधार पर एक विशेष प्रकार का संगठन जन्म ले लेता है। वर्तमान अध्ययन में शामिल सभी साधू अयोध्या में स्थायी रूप से अपने मठों में रहते हैं।

अयोध्या उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जनपद का एक प्रसिद्ध धार्मिक एवं ऐतिहासिक नगर है। यह 26^0 27^1 उत्तरी अक्षांश एवं 82^0 13^1 पूर्वी देशान्तर पर घाघरा (सरयू) नदी के दाहिने तट पर स्थित है। यह फैजाबाद जिला मुख्यालय से लगभग 8 किमी0 उत्तर-पूर्व बसा है। उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ से इसकी दूरी लगभग 126 किमी0 है।

भारतीय साहित्य में अयोध्या का उल्लेख भारत के प्राचीनतम् नगर के रूप में आता है। ऐतिहासिक तथा साहित्यिक प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि अयोध्या एक प्राचीन नगरी है। अथर्ववेद एवं तैत्तिरीय आरण्यक में अयोध्या का प्रतीकात्मक वर्णन मिलता है, जिसमें मानव शरीर को आठ चौकों और नौ द्वारों वाली देवताओं की नगरी अयोध्या बताया गया है। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में अयोध्या को कोशल जनपद की नगरी बताया है जिसकी स्थापना मनु ने की। पौराणिक कथाओं में कहा जाता

है कि मनु ने अयोध्या नगरी को बसाकर अपने ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु को दे दिया। इक्ष्वाकु के बाद उसका पुत्र विकुक्षि अयोध्या का राजा हुआ। विकुक्षि का एक दूसरा नाम 'अयोध' भी था। अयोध्या नाम को 'अयोध' से जोड़ा जाता है। कुछ पुराणों में अयोध्या शब्द का प्रयोग अयोध्या के एक उपाधि के रूप में किया गया है। अयोध्या का अर्थ ''न योध्या'' अर्थात् 'योधितुमर्हा' अर्थात् युद्ध के अयोग्य बताया गया है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण (1/13/1) से अयोध्या शब्द का अर्थ और स्पष्ट हो जाता है, जिसमें कहा गया है कि ''अयोध्या नाम की इस नगरी को देवता भी नहीं जीत सकते।''

शोध कार्य की समस्या

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। प्रत्येक वस्तु इस प्रक्रिया में सम्मिलित है। समाज एवं सामाजिक प्रणाली भी सदैव परिवर्तनशील है। साधू समुदाय भी परिवर्तन की प्रक्रिया से अछूता नहीं है। आज साधू समुदाय में कई ऐसे लक्षण दिखाई दे रहे हैं, जो परम्परागत शास्त्रीय स्वरुप से भिन्न हैं।

त्याग, धन एवं शक्ति के प्रति उदासीनता साधुओं की विशेषता रही है। साधु सांसारिक भोगों से जितना दूर होते हैं लोगो द्वारा उतना ही पूज्य होते हैं एवं सद्गुणी समझे जाते हैं। पर आज मूल्य बदल रहे हैं। अत्याधुनिक महंगे साधनों का प्रयोग कर साधू गौरवान्वित महसूस करते हैं। धन एवं वस्तुओं के प्रति उनका आकर्षण सांसारिक व्यक्तियों से कम नही है। समृद्ध साधुओं में कार, ए0सी0, टेलीविजन, मोबाइल, जैसे महंगे एवं आरामदायक उपकरणों का प्रयोग आम बात है। ये समृद्ध साधू अपनी सुरक्षा के प्रति भी अत्यधिक सतर्क होते हैं। साधू सुरक्षा की दृष्टि से स्वयं हथियार रखने के अतिरिक्त अंगरक्षक भी रखते हैं। कई बार यह वास्तविक जरुरत न होकर शक्ति एवं समृद्धि के प्रदर्शन के लिए भी होता है। साधुओं का एक बड़ा वर्ग राजनीतिक शक्ति अर्जित करने हेतु तरह-तरह द्वंद-फंद भी करता है। वे मन्दिर एवं मठ के बजाय संसद एवं विधान सभाओं में बैठना चाहते हैं। इस प्रकार सामाजिक सम्बन्धों एवं व्यक्तिगत आवश्यकताओं का निषेध एवं परित्याग करने से सम्बन्धित मूल्य क्षीण पड़ रहे हैं। बहुतेरे साधुओं के लिए धर्म पण्य (commodity) है। यह तथाकथित धर्म लोगों को आकर्षित करने एवं धन इक्ट्ठा करने का साधन हो गया है।

शोध का उद्देश्य

साधुओं पर हमारे अध्ययन का मुख्य उद्देश्य एक संस्था के रुप में साधू का अन्वेषण करना एवं तेजी से बदल रहे समाज में इसके कार्यों की जानकारी प्राप्त करना है। प्रत्येक समाज निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। समाज की आवश्यकताएँ भी उसके संरचनात्मक परिवर्तनों के साथ ही बदलती रहती हैं। परिवर्तित सामाजिक आवश्यकताएँ सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न अंगों की उपयोगिता का निरन्तर मूल्यांकन करती रहती हैं।

साधू समुदाय वृहद हिन्दू समाज का अभिन्न अंग रहा है। परम्परागत भारतीय समाज में यह समुदाय महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पादित करता था, किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक युग में इस समुदाय के सदस्य नई परिस्थितियों के अनुरुप नई भूमिकाओं को ग्रहण करने में कम रूचि दिखा रहें हैं। परिणामस्वरूप समाज में साधू विरोधी विचारधारा प्रबल हो रही है। लोगों का एक समूह वर्तमान सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में साधुओं की भूमिका को लेकर प्रश्न खड़ा कर रहे हैं। शिक्षित व्यक्तियों में यह विचार बड़ी तीव्रता से फैल रहा है कि साधू परजीवी के समान है। हिन्दू समाज साधुओं का भरण-पोषण करता है, किन्तु बदले में उसे कुछ प्राप्त नही हो रहा है। साधू लोगों द्वारा प्राप्त सुविधाओं का दुरूपयोग कर रहे हैं। आलोचको का एक वर्ग इन्हें अ-प्रकार्यात्मक यहाँ तक की दुष्प्रकार्यात्मक मानता है।

इन स्थितियों में प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य वर्तमान समय में अयोध्या के साधू समुदाय की सामाजिक एवं आर्थिक रुपरेखा प्रस्तुत करना है। तेजी से परिवर्तित हो रहे सामाजिक मूल्यों के साथ साधू समुदाय के अनुकूलन, विसंगतियों एवं प्रकार्यों की खोज भी मुख्य उद्देश्य है।

इकाइयों का वैयक्तिक अध्ययन : इस अध्ययन के अन्तर्गत सम्मिलित 25 साधुओं का वैयक्तिक अध्ययन किया गया।

साधू की पारिवारिक पृष्ठभूमि : वर्तमान अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि साधू किस तरह के पारिवारिक पृष्ठभूमि से आते हैं। निम्नलिखित सारणी इस तथ्य पर प्रकाश डालती है :

साधू की पारिवारिक पृष्ठिभूमि

परिवार का स्वरूप	पुरूष	प्रतिशत	महिला	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत
संयुक्त परिवार	14	56	–	–	14	56
नाभिकीय परिवार	7	28	1	4	8	32
एकाकी व्यक्ति	2	8	1	4	3	12
कुल	23	92	2	8	25	100

उपर्युक्त सारणी से पता चलता है कि 56 प्रतिशत साधू संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था से जुड़े हुए हैं। 32 प्रतिशत साधू नाभिकीय परिवार से आये हैं। 12 प्रतिशत साधू के परिवार में कोई व्यक्ति शेष नहीं था। संयुक्त परिवार में सभी सदस्यों को समान महत्त्व नहीं मिलता, न ही सभी सदस्यों में उत्तरदायित्व ही समान रूप से बँटा होता है। ऐसे में झगड़े, गैर जिम्मेदारी, असन्तोष आदि के कारण कम महत्त्वपूर्ण सदस्य मुख्यतः अविवाहित, विधवा/ विधुर पारिवारिक सामाजिक जीवन को छोड़ने का मन बना लेते हैं एवं संन्यास की तरफ आकर्षित हो जाते हैं। 32 प्रतिशत साधू नाभिकीय पारिवारिक व्यवस्था से जुड़े हैं। नाभिकीय परिवारों में व्यक्तिवादिता पाई जाती है। बहुत से व्यक्ति जो परिवार में सामंजस्य नहीं बैठा पाते वे संन्यास की तरफ आकर्षित हो जाते हैं। ऐसे सदस्य जिनके परिवार में सभी सदस्यों की मृत्यु हो गयी हो और कोई शेष नहीं है वे जीवन में काफी एकाकी हो जाते हैं। एकाकीपन से मुक्ति एवं स्वयं को सान्त्वना देने के लिए ऐसे लोग संन्यास ग्रहण कर लेते हैं।

साधू की वैवाहिक स्थिति : व्यक्ति अपने परिवार तथा जीवन-साथी का त्याग कर संन्यास ग्रहण करता है। संन्यास सांसारिक जीवन के त्याग को महत्त्व देता है। भारतीय धार्मिक चिन्तन में स्त्रियों को मोक्ष मार्ग में बाधक स्वीकार किया गया है। प्रस्तुत सारणी साधुओं की वैवाहिक स्थिति पर प्रकाश डालती है।

साधू की वैवाहिक स्थिति

साधू की वैवाहिक स्थिति	पुरूष	प्रतिशत	महिला	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत
अविवाहित	18	72	–	–	18	72
विधवा/ विधुर	3	12	1	4	4	16
पति/ पत्नी जीवित	2	8	1	4	3	12
कुल	23	92	2	8	25	100

उपर्युक्त सारिणी से पता चलता है कि 72 प्रतिशत साधू अविवाहित थे। इस स्थिति में यह कहा जा सकता है कि अविवाहित व्यक्तियों में उत्तरदायित्व का अभाव एवं जीवन-साथी के अभाव से उत्पन्न तनाव व्यक्ति को संन्यास की तरफ ढकेलता है। जीवन-साथी की मृत्यु भी ऐसी स्थिति उत्पन्न करती है। 16 प्रतिशत साधू जीवन-साथी की मृत्यु के बाद संन्यास ग्रहण किया है।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि वैवाहिक कुसमायोजन (Maladjustment) भी व्यक्ति को संन्यास की तरफ आकर्षित करने का एक महत्तवपूर्ण कारक हो सकता है।

साधू की वर्ण संरचना : परम्परागत हिन्दू सामाजिक संगठन केवल द्विज वर्ण के लोगों को साधू-जीवन ग्रहण करने की अनुमति देता है। द्विज में भी ब्राह्मणों को वरीयता दी गई है। वृहदारण्यकोनिषद् एवं मुण्डकोपनिषद् ने तो केवल ब्राह्मणों को संन्यास योग्य माना है। किन्तु वर्तमान में परिस्थितियाँ बदली हैं। वर्ण आधारित नियंत्रण कमजोर होने लगा है। कई सुधारवादी संतों एवं विचारकों रामानन्द, कबीर, रैदास, दादू, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं गाँधी जी ने शूद्रों के ऊपर थोपी गई निर्योग्ताओं के विरूद्ध आवाज उठाई। रामानन्द के पूर्व शूद्रों के लिए संन्यास लगभग बन्द था। सम्भवतः रामानन्द पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने शूद्रों को शिष्य के रूप में दीक्षित किया। सुधारवादी सम्प्रदायों ने रामानन्द का अनुसरण करते हुए अपने सम्प्रदाय (पंथ) में शूद्रों को दीक्षित करना प्रारम्भ किया। वर्तमान अध्ययन में साधू के वर्ण-संरचना की जानकारी प्राप्त की गई है :

साधुओं की वर्ण संरचना

वर्ण	साधु	प्रतिशत
ब्राह्मण	12	48
क्षत्रिय	2	8
वैश्य	1	4

शूद्र	5	20
अन्त्यज/ अस्पृश्य	2	8
कोई उत्तर नहीं	3	12
कुल	25	100

उपर्युक्त सारणी से पता चलता है कि 60 प्रतिशत साधू, ब्राह्मण, क्षत्रिय, एवं वैश्य अर्थात् द्विज वर्ण के हैं। तमाम सामाजिक सुधारों के बाद भी संन्यास में द्विज वर्ण के सदस्यों की अधिकता है। विशेष रूप से ब्राह्मणों की। कुल साधुओं का लगभग आधा 48 प्रतिशत साधू ब्राह्मण वर्ण के हैं। क्षत्रिय एवं वैश्य साधु क्रमशः 8 प्रतिशत तथा 4 प्रतिशत हैं।

शूद्र एवं अस्पृश्यों की कुल संख्या 28 प्रतिशत है। जो यह सिद्ध करता है कि सभी वर्ण के व्यक्ति संन्यास का अनुसरण कर रहे हैं। यह वर्ण/ जाति बताने वाले कुल साधू का लगभग 1/ 3 है।

अयोध्या में ब्राह्मण वर्ण के साधू की अधिकता के कई कारक है। परम्परागत रूप से ब्राह्मण ही संन्यास ग्रहण करते थे। बदली परिस्थितियों में वे अपने परिजनों को दीक्षित कर शिष्य बना लेते हैं। भारतीय समाज में ब्राह्मण पुरोहितों का कार्य करते हैं। इसके लिए कर्मकाण्डों की शिक्षा जरूरी है। अयोध्या में कई संस्कृत विद्यालय है, जहाँ धर्म दर्शन एवं कर्मकाण्डों की शिक्षा दी जाती है। ऐसे में बहुत से ब्राह्मण विद्यार्थी संस्कृत शिक्षा के लिए अयोध्या आते हैं। अयोध्या में साधू-जनों के सम्पर्क से प्रभावित हो कई विद्यार्थी संन्यास ग्रहण कर लेते हैं।

साधुओं की शैक्षिक स्थिति :

साधुओं की शैक्षिक स्थिति	साधु	प्रतिशत
स्नातक एवं स्नातकोत्तर	6	24
इण्टरमीडिएट या समकक्ष	2	8
हाईस्कूल या समकक्ष	5	20
प्राथमिक शिक्षा	9	36
अशिक्षित	3	12
कुल	25	100

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि 24 प्रतिशत स्नातक या स्नातकोत्तर हैं। 64 प्रतिशत साधू इण्टमीडिएट या उससे कम शिक्षित हैं। जिसमें मात्र 8 प्रतिशत साधू ही इण्टरमीडिएट या समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण की है। 20 प्रतिशत साधू हाईस्कूल तक शिक्षा ग्रहण किए हैं। 36 प्रतिशत साधू केवल प्राथमिक शिक्षा प्राप्त किए हैं। 12 प्रतिशत साधू अशिक्षित हैं।

साधुओं में निम्न शैक्षिक स्तर का कारण यह है कि अयोध्या में रामानन्दी सम्प्रदाय की अधिकता है। रामानन्दी सम्प्रदाय में कम उम्र के बच्चों को भी दीक्षित करने की प्रथा है। दूसरा मुख्य कारण यह है कि वैष्णव सम्प्रदाय भक्ति मार्ग को बल देता है एवं ईश्वर के प्रति पूर्ण समपर्ण को महत्त्व देता है। इससे कम शिक्षित व्यक्ति भी आसानी से साधू जीवन अपना लेते हैं।

यह ध्यातब्य है कि 24 प्रतिशत साधू स्नातक/ स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त किए हैं। इसका कारण यह है कि अयोध्या में कई संस्कृत महाविद्यालय है जहाँ साधू/ विद्यार्थी आसानी से संस्कृत की शिक्षा ग्रहण करते हैं। 6 साधू की संख्या में से 4 ने आचार्य की उपाधि प्राप्त की है। इसलिए स्नातक/ स्नातकोत्तर स्तर पर भी शिक्षा अधिक दिखाई देती है।

साधू जीवन में प्रवेश के पूर्व साधू की व्यावसायिक स्थिति- इस तथ्य का विश्लेषण महत्त्वपूर्ण है कि साधू संन्यास ग्रहण के पूर्व कौन सा व्यवसाय करते थे। निम्नलिखित सारणी साधू के साधू-जीवन में प्रवेश के पूर्व व्यावसायिक स्थिति को स्पष्ट करता है :

साधू जीवन में प्रवेश के पूर्व साधू की व्यावसायिक स्थिति

व्यवसाय	साधू					
	पुरूष	प्रतिशत	महिला	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत
कृषि	3	12	0	0	3	12
नौकरी	1	4	0	0	1	4
पारिवारिक व्यवसाय	2	8	0	0	2	8
बेरोजगार	4	16	0	0	4	16
विद्यार्थी	13	52	0	0	13	52
गृहिणी	0	0	2	8	2	8
कुल	23	92	2	8	25	100

उपर्युक्त सारणी से पता चलता है कि सर्वाधिक 52 प्रतिशत साधू विद्यार्थी जीवन से साधु जीवन में आये हैं। इसका कारण रामानन्दी सम्प्रदाय में कम उम्र के बच्चों को संन्यास में दीक्षित करने की प्रथा है। कोई भी बच्चा जो किन्हीं कारणों से घर छोड़ कर साधु के सम्पर्क में आता

है वे उन्हें आश्रय देकर दीक्षित कर लेते हैं। दूसरा कारण संस्कृत शिक्षा के लिए अयोध्या आने वाले विद्यार्थियों को साधुजनों द्वारा साधू बनने के लिए मना लेना है।

सारणी से ज्ञात होता है कि 16 प्रतिशत साधू बेरोजगार थे। मात्र 4 प्रतिशत साधू नौकरी करते थे। दोनो महिला साध्वियाँ गृहिणियाँ थीं। 12 प्रतिशत साधू कृषि कार्य करते थे। 8 प्रतिशत साधू पारिवारिक या जातिगत व्यवसाय में संलग्न थे। बेरोजगार, विद्यार्थी तथा गृहिणी अर्थात् 76 प्रतिशत साधू, साधू जीवन में प्रवेश के पूर्व किसी तरह का आर्थिक उत्पादन नहीं करते थे।

साधू जीवन में प्रवेश के पूर्व साधू की आर्थिक स्थिति : साधू जीवन में प्रवेश के पूर्व साधू की आर्थिक स्थिति को जानना जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही कठिन भी। यह निर्धारित करना की उनकी आर्थिक स्थिति क्या थी। साधुओं को अपने परिवार की वार्षिक आय का सही अनुमान नहीं था। कृषि भूमि की जानकारी बीघे में दी जाती थी। जिसका क्षेत्रफल स्थान-स्थान पर अलग-अलग है। इन कठिनाइयों के बावजूद साधू का साधू बनने से पूर्व आर्थिक स्थिति को तीन वर्गों में बाँटा गया है। निम्न आय वर्ग, मध्यम आय वर्ग एवं उच्च आय वर्ग :

साधू जीवन में प्रवेश के पूर्व साधु की आर्थिक स्थिति

आय वर्ग	साधू	प्रतिशत
निम्न आय वर्ग	10	40
मध्यम आय वर्ग	13	52
उच्च आय वर्ग	1	4
कोई उत्तर नहीं	1	4
कुल	25	100

उपर्युक्त सारणी से पता चलता है कि 40 प्रतिशत साधू निम्न आय वर्ग से है। अधिकांश साधू या उनका परिवार कृषि कार्य में संलग्न था, उनकी छोटी कृषि जोतें थीं या वे बटाई पर कृषि एवं मजदूरी करते थे। 52 प्रतिशत साधू मध्यम आय वर्ग से सम्बन्धित थे। मात्र 4 प्रतिशत साधू ही उच्च आय वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। इससे पता चलता है कि साधू बनने एवं आय वर्ग में कुछ सम्बन्ध जरूर है। निम्न एवं मध्यम आय वर्ग के व्यक्ति संन्यास की तरफ अधिक आकर्षित हुए हैं।

साधू की आर्थिक स्थिति साधू जीवन के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी है। अध्यनकर्ताओं ने इस तथ्य का अन्वेषण किया है कि साधू की आर्थिक स्थिति कैसी है ? अधिकांश महन्त अपनी आर्थिक स्थिति के बारे में स्पष्ट रूप से बताने को तैयार नहीं थे। वे अपनी आमदनी को आकाशवृत्ति (दान) पर आधारित बताकर इस सन्दर्भ में अनिश्चितता की चर्चा कर कुछ बताने से बच रहे थे। ऐसे साधू जो मठ में किसी सेवा कार्य में लगे हैं, उनके जरूरतों की पूर्ति मठ से होती है। उनकी व्यक्तिगत आमदनी बहुत कम है। ऐसे साधू जो दान, भिक्षा आदि पर निर्भर हैं सामान्यतः गरीब हैं। जिन साधुओं के पास बड़ी सीर (भूमि) है, कथावाचक हैं, प्रतिष्ठित मन्दिर/ मठ से जुड़े हैं या सन्दिग्ध तरीकों से धनार्जन कर रहे हैं, वे सामान्यतः धनी हैं। कुछ साधू ब्याज पर (मासिक 10 से 15 प्रतिशत) रूपया देते हैं।

साधू के मुख्य खर्चों में भोजन, वस्त्र, पूजा, भण्डारा, यात्रा, वाहन एवं भूमि की खरीद, मन्दिर एवं मठ का निर्माण है। धर्मार्थ चिकित्सालय के संचालन, गोशाला, विद्यालय तथा मन्दिर/ मठ में रह रहे विद्यार्थियों के भोजन आदि पर भी खर्च करते हैं। निम्नलिखित सारणी में साधू के वार्षिक आय का विवरण प्रस्तुत है :

साधू की वार्षिक आय

वार्षिक आय	साधू	प्रतिशत
रू0. 10,000 से कम	7	28
रू0. 10,000 से 50,000	7	28
रू0. 50,000 से 2,00,000	2	08
रू0. 2,00,000 से 5,00,000	2	08
रू0. 5,00,000 से अधिक	1	04
कोई उत्तर नहीं	6	24
कुल	25	100

उपर्युक्त सारणी से पता चलता है कि 28 प्रतिशत साधुओं की वार्षिक आमदनी दस हजार से कम है। 28 प्रतिशत साधू रूपये 10,000 से 50,000 के मध्य प्राप्त करते हैं। 08 प्रतिशत साधू रूपये 50,000 से 2,00,000 के मध्य आय प्राप्त करते हैं। 08 प्रतिशत साधू रूपये 2,00,000 से 5,00,000 के मध्य आय प्राप्त करते हैं। मात्र एक साधू ने अपनी आमदनी 5 लाख रूपये से अधिक बताई। 24 प्रतिशत साधू ने अपनी आदमनी नहीं बताई, इन लोगों ने लेखा-जोखा न होने, आय को आकाशवृत्ति पर निर्भर बताकर, आय से सम्बन्धित जानकारी नहीं दी। ये सभी किसी मन्दिर/ मठ के महन्त या प्रमुख हैं।

संन्यास ग्रहण की उम्र-मनु ने सतर्कता से लिखा है कि वेदाध्ययन, सन्तानोत्पत्ति एवं यज्ञों के उपरान्त (देव-ऋण, ऋषि-ऋण एवं पितृ-ऋण चुकाने के उपरान्त) ही मोक्ष की चिन्ता करनी चाहिए।

वौधायन धर्मसूत्र में लिखा है कि वह गृहस्थ जिसे सन्तान न हो, जिसकी पत्नी मर गयी हो या जिसके लड़के ठीक से धर्म-मार्ग में लग गये हों या जो 70 वर्ष से अधिक अवस्था का हो चुका हो, संन्यासी हो सकता है। किन्तु अब इन नियमों का पालन नहीं होता है। बहुत से मठों के महन्त दीक्षा देने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में अधिक सावधानी नहीं बरतते। कई बार घर से भागे हुए बच्चों को भी मठों के महन्त उन्हें साधू बनने के लिए राजी कर लेते हैं। रामानन्दी सम्प्रदाय में यह प्रथा अधिक दिखाई पड़ती है। पुराने समय में साधू शिष्य बनाने में विशेष सावधानी बरतते थे, किन्तु वर्तमान में इन औपचारिकताओं का पालन नहीं होता है। निम्नलिखित सारणी में साधुओं के संन्यास ग्रहण की उम्र का विवरण है :

साधू की दीक्षा ग्रहण की उम्र

आय वर्ग	साधू	प्रतिशत
1 से 10	1	4
11 - 20	15	60
21 - 30	4	16
31 - 40	2	8
41 - 50	1	4
51 - 60	2	8
कुल	25	100

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि 80 प्रतिशत साधू 1 से 30 वर्ष की अवस्था में साधू बने। 30 वर्ष से अधिक की उम्र में संन्यास ग्रहण करने वाले साधू की संख्या 20 प्रतिशत है। 1 से 10 वर्ष की उम्र में 1 साधू, 11 से 20 वर्ष की उम्र में 15 साधू, 21-30 वर्ष की उम्र में 4 साधू, 31 से 40 वर्ष की उम्र में 2 साधू, 41 से 50 वर्ष की उम्र में 1 साधू, एवं 51 से 60 वर्ष की उम्र में 2 साधू ने संन्यास ग्रहण किया। किसी भी साधू ने 60 अधिक की अवस्था में संन्यास ग्रहण नहीं किया। 11 से 20 वर्ष की अवस्था में सबसे अधिक साधू 60 प्रतिशत ने संन्यास ग्रहण किया। इसका कारण किशोरावस्था के संक्रमण काल में घर त्याग करने वाले बच्चों का साधू जीवन में दीक्षित होना है।

साधू एवं उसका पारिवारिक सम्पर्क : व्यक्ति अपने परिवार, जीवन-साथी एवं सामाजिक सम्बन्धों का त्यागकर संन्यास ग्रहण करता है। संन्यास सांसारिक जीवन के प्रति निष्क्रियता या विरक्ति एवं सांसारिक भोगों के त्याग को महत्त्व देता है। संन्यासी विरक्त सामाजिक जीवन को नियन्त्रित करने वाले नियमों का पालन कर आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। किन्तु व्यावहारिक रूप से इन सिद्धान्तों का पालन बहुत कम होता है। संन्यास का मुख्य लक्ष्य पूर्ण-विरक्त का अब लोप होता जा रहा है। परिणाम स्वरूप साधू में आध्यात्मिक गुणों की कमी हो रही है। वे पारिवारिक हितों की पूर्ति में अपने आध्यात्मिक लक्ष्यों एवं समाज के प्रति अपने दायित्वों से दूर होते जा रहें हैं। परिवार से पूर्ण-विरक्ति साधू को इस योग्य बनाती है कि वे विविध प्रकार से समाज सेवा कर सकें। इसके बदले में उसे लोगों से अपार सम्मान प्राप्त होता है, सारणी निम्न है :

साधू एवं उसका पारिवारिक सम्पर्क

साधु का पारिवारिक सम्पर्क	साधू	प्रतिशत
कोई सम्बन्ध नहीं	12	48
संयोग बस मिलते हैं	2	8
विशिष्ट अवसरों में मिलते हैं	4	16
अकसर मिलते हैं	5	20
वैवाहिक सम्बन्धों को बनाए हुए हैं	2	8
कुल	25	100

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि 52 प्रतिशत साधू अपने पारिवारिक सम्पर्क को बनाए हुए हैं। 48 प्रतिशत साधू जिन्होंने कभी घर न जाने की बात कही, इनमें से अधिकांश ने यह स्वीकार किया है कि उनके परिजन स्वयं आकर उनसे मिलते हैं। 20 प्रतिशत साधू अक्सर अपने घर जाते रहते हैं। 8 प्रतिशत साधू घरवारी साधू हैं, जो अपनी साथी के साथ ही रह रहे हैं।

साधू एवं शिष्य

वैष्णवों में यह परम्परा है कि महन्त ही साधुशिष्यों को दीक्षा देते हैं। एक सामान्य साधू केवल गृहस्थशिष्यों को ही दीक्षा दे सकते हैं। शिष्यों को दीक्षा देने के दो मुख्य उद्देश्य हैं- 1. सम्मान में वृद्धि करना। 2. निरन्तर आर्थिक मदद के स्रोत का निर्माण।

अयोध्या में छोटी छावनी एवं बड़ी छावनी अत्यधिक संख्या में साधुशिष्यों को दीक्षित करने के स्थान हैं। हनुमानगढ़ी निर्वाणी अखाड़ा में भी अत्यधिक साधू हैं। साधुओं की बड़ी संख्या इनके सम्मान एवं प्रभाव में वृद्धि करती है।

साधू अधिक संख्या में साधू एवं गृहस्थ शिष्यों को अधिक दक्षिणा प्राप्त करने के लिए भी दीक्षित करते हैं। गुरू पूर्णिमा के अवसर पर गुरू को शिष्य दक्षिणा देते हैं। अधिक संख्या में शिष्यों का अर्थ है अधिक दक्षिणा प्राप्त करना। इसलिए शिष्यों को दीक्षित करने की होड़ लगी रहती है। इस कारण नये साधुओं में योग्यता का ह्रास हो रहा है। बहुत से अयोग्य व्यक्ति भी साधू की दीक्षा प्राप्त कर अपन गलत कार्यों से साधुसमुदाय को बदनाम कर रहे हैं।

निम्नलिखित सारणी साधू एवं उनके शिष्यों पर प्रकाश डालती है :

(i) साधू एवं साधुशिष्य

साधुशिष्य	साधू	प्रतिशत
दीक्षा नहीं देते	11	44
0 - 0	1	4
1 - 5	7	28
6 - 10	0	00
11 - 20	3	12
21 - 50	1	4
51 से अधिक	1	4
शिष्यों की संख्या ज्ञात नहीं	1	4
कुल	25	100

उपर्युक्त सारणी से पता चलता है कि 44 प्रतिशत साधू किसी साधुशिष्य को दीक्षा नहीं देते। एक साधू ऐसे हैं, जो दीक्षा देते हैं, किन्तु जिनके कोई साधुशिष्य नहीं है। 1 से 5 शिष्यों को दीक्षित करने वाले साधू 28 प्रतिशत हैं। 6 से 10 शिष्यों को दीक्षा देने वाले साधु 1 हैं। 11 से 20 साधुशिष्यों को दीक्षा देने वाला कोई साधू नहीं है। 12 प्रतिशत साधू 21 से 50 साधुशिष्यों को दीक्षित किए हैं। 51 से अधिक संख्या में साधू शिष्य को दीक्षित करने वाले साधु 4 प्रतिशत हैं।

(ii) साधू एवं गृहस्थशिष्य

गृहस्थ शिष्य	साधू	प्रतिशत
दीक्षा नहीं देते	7	28
0 - 0	0	0
1 - 5	2	8
6 - 10	0	0
11 - 20	2	8
21 - 50	1	4
51 - 100	2	8
101 - 1000	4	16
1000 से अधिक	5	20
गृहस्थ शिष्यों की संख्या ज्ञात नहीं	2	8
कुल	25	100

उपर्युक्त सारणी से ज्ञात होता है कि 28 प्रतिशत साधू गृहस्थशिष्यों को भी दीक्षा नहीं देते। ऐसे साधू सामान्तयः किसी मठ/ स्थान से सम्बद्ध हैं एवं वह सेवा कार्य (पुजारी, भण्डारी, कोतवाल, रसोईया, हुजूरिया आदि के रूप में) कर रहे हैं। इन लोगों की आर्थिक जरूरतें मठों

द्वारा पूर्ति होती हैं। 8 प्रतिशत साधू के 1 से 5 गृहस्थ शिष्य हैं। 11 से 20 गृहस्थ शिष्यों वाले साधू 8 प्रतिशत हैं। 100 से 1000 तक गृहस्थ शिष्यों वाले साधू की संख्या 16 प्रतिशत है। 20 प्रतिशत साधू के 1001 से अधिक गृहस्थ शिष्य हैं। 2 साधू को अपने गृहस्थ शिष्यों की संख्या ज्ञात नहीं है।

साधू का सामाजिक जुड़ाव

पुराने समय में साधू जंगलों में रहते थे। ध्यान एवं चिन्तन ही उनका मुख्य कार्य था। उनके जीवन का लक्ष्य जन्म एवं मृत्यु के रहस्यों की खोज करना तथा प्रकृति एवं ईश्वर के रहस्यों पर प्रकाश डालना होता था। वे जंगलों में फल, पत्तियां, कन्दमूल, या अन्य उपलब्ध वस्तुओं को खाकर जीवित रहते थे। बहुत कम स्थितियों में ही वे जंगलों से बाहर आकर सामान्य जनता में शामिल होते थे। इस तरह की कठिन जीवन-शैली के कारण ही लोग उनका आदर करते थे। किन्तु, वर्तमान में परिस्थितियाँ पूर्णतः बदल गई हैं। साधू एक सामान्य गृहस्थ की भाँति ही स्थायी निवास-स्थान बनाकर रह रहे हैं। वे उन सभी समस्याओं में उलझे हैं जिनका सामना गृहस्थ व्यक्ति भी करते हैं।

साधू के सामाजिक सम्बन्ध की प्रकृति

सम्बन्ध की प्रकृति	साधू	प्रतिशत
आम जनता से सामान्य सामाजिक सम्बन्ध	11	44
धर्म आधारित सम्बन्ध	7	28
केवल साधुजनों से सम्बन्ध	7	28
कुल	25	100

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि 44 प्रतिशत साधू सामान्य सामाजिक सम्बन्ध बनाये हुए हैं। ये जन्म, विवाह, मृत्यु जैसे अवसरों पर आम लोगों से जुड़े रहते हैं। 28 प्रतिशत साधू आम जनता के धार्मिक आयोजन में सहभागिता करते हैं। 28 प्रतिशत साधू, केवल साधू समुदाय से जुड़े रहते हैं। अध्ययन में कोई भी ऐसा साधू नहीं मिला जो एकान्तशील हो एवं ध्यान, चिन्तन, मनन्, आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति एवं ईश्वर के स्मरण में ही संलग्न हो।

अस्पृश्यों के मन्दिर में प्रवेश के सम्बन्ध में दृष्टिकोण

अस्पृश्यों के मन्दिर में प्रवेश के सम्बन्ध में दृष्टिकोण :

मन्दिर में प्रवेश के सम्बन्ध में दृष्टिकोण	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	अस्पृश्य	कोई उत्तर नहीं	कुल	प्रतिशत
पूर्ण समर्थन करते हैं	7	2	1	5	2	3	20	80
शर्तों के साथ समर्थन करते हैं	5	0	0	0	0	0	5	20
कुल	12	2	1	5	2	3	25	100

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सभी साधुओं ने अस्पृश्यों को मन्दिर में प्रवेश का समर्थन किया है किन्तु 20 प्रतिशत साधुओं ने कुछ शर्तों का जैसे पवित्र होकर मन्दिर में प्रवेश कर सकते हैं, दर्शन कर सकते है पर मूर्ति को स्पर्श नहीं कर सकते। दर्शन कर पुजारी के माध्यम से प्रसाद अर्पित करें आदि का उल्लेख किया है। इस तरह की शर्तों का उल्लेख करने वाले सभी साधू ब्राह्मण हैं। 80 प्रतिशत साधुओं ने अस्पृश्यों के मन्दिर में प्रवेश का पूर्ण समर्थन किया है। स्पष्ट है कि अयोध्या के अधिकांश साधू अस्पृश्यता को नहीं मानते हैं।

परिणाम एवं निष्कर्ष

शोधगत निष्कर्षों के सारांश के रूप में हम यह कह सकते हैं कि साधू समाज वृहद् हिन्दू समाज का अभिन्न अंग है। वर्तमान समाज में धार्मिक नेतृत्व प्रदान करने, समाज सेवा, निराश्रित एवं पारिवारिक जीवन से ऊब चुके लोगों को शरण देने एवं उन्हें मानसिक सन्तुष्टि प्रदान करने में साधुओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। साधू समाज की प्रासंगिकता एवं उपयोगिता इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि अधिकांश साधू दान एवं भिक्षाटन कर अपनी जीविका प्राप्त करते हैं एवं वृहद हिन्दू समाज उन्हें दान देने में सदैव तत्पर रहता है। इन प्रकार्यों के होते हुए भी अयोध्या का साधू समाज परम्परागत आदर्श स्थितियों के पूर्ण पालन से विचलित हुआ है। वे धार्मिक क्रियाओं में उसी तरह रत हैं जैसे एक धार्मिक गृहस्थ।

एकान्तशीलता जैसे गुणों का साधुओं में लोप हो चुका है। अधिकांश साधू एक सामान्य गृहस्थ की भाँति ही सामान्य सामाजिक सम्बन्धों को बनाये हुए हैं। धन एवं वस्तु संग्रह की प्रवृत्ति साधुओं में सामान्य है। वे अर्थ प्राप्ति के लिए निरन्तर उत्सुक रहते हैं। कई साधू व्यावसायिक क्रियाओं, नौकरी, मठ/ मन्दिर में किरायेदार रखने, कथावाचक एवं कई अन्य निन्दनीय कार्यों जैसे अत्यधिक ब्याज पर धन देने, गाइडों के साथ दुरभि-सन्धि कर तीर्थ यात्रियों को ठगने जैसे क्रियाओं से भी आय अर्जित करते हैं। साधू समुदाय के अन्तर्गत ब्राह्मण वर्ण के लोगों का वर्चस्व बना हुआ है। कई साधू अपने परिजनों को शिष्य के रूप में दीक्षित कर उन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर लेते हैं। इस तरह के साधुओं की संन्यास के प्रति निष्ठा कम होती है एवं उनके अनैतिक गतिविधियों में संलग्न होने की सम्भावना बनी रहती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

ब्रह्मचारी, बी0 (1965) -छोटी छावनी का संक्षिप्त इतिहास, भगवताचार्य स्माकर सदन, अयोध्या

बेकर, हेंस (1986) -अयोध्या, एगवर्ट फोर्सटन ग्रोनिन्गन

चतुर्वेदी, परशुराम (1972) -उत्तर भारत की संत परम्परा, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

गुडे, डब्लू0 जे0 एण्ड हाट, पी0 के0 (1952) -मेथड्स इन सोशल रिसर्च लन्दन, मैकग्रा हिल बुक

धुरिये, जी0 एस0 (1964) -इण्डियन साधूज, पापुलर बुक डिपो बम्बई

हरिवंशपुराण, गीताप्रेस गोरखपुर।

विष्णुपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर।

काणे, पी0 वी0 (1992) -धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग प्रथम उ0 प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ

प्रभु, पी0 एच0 (1963) -हिन्दू सोशल ऑर्गनाइजेशन, पापुलर प्रकाशन बम्बई

त्रिपाठी, बी0 डी0 (2004) -साधूज ऑफ इण्डिया, पिलिग्रिम्स पब्लिकेशन्स, वाराणसी

त्रिपाठी, त्रिवेणी दत्त (1988) -हिन्दू मठ : एक समाज-ास्त्रीय अध्ययन, संजय बुक सेन्टर, गोलघर, वाराणसी

वर्मा, ठाकुर प्रसाद एवं गुप्त, स्वराज्य प्रका-ा (2001) -श्रीराम जन्मभूमि : ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्य, श्रीराम जन्मभूमि न्यास, नयी दिल्ली,

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,41-46
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 31 दिसम्बर 2014

छत्तीसगढ़ राज्य सचिवालय एवं संचालनालय के बीच सम्बन्ध

पूजा बाजपेयी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *छत्तीसगढ़ राज्य सचिवालय एवं संचालनालय के बीच सम्बन्ध* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *पूजा बाजपेयी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

राज्य में संविधान के प्रावधानों के अनुसार व्यवस्था बनाये जाने की जिम्मेदारी राज्य शासन की है। राज्य के कानून व्यवस्था अधोसंरचना विकास, कल्याण, सामाजिक न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय तथा वित्त व्यवस्था के संबंध में प्रभावी कार्यवाई करने की जिम्मेदारी राज्य शासन की है।

उपरोक्त कंडिका 1 में दिये गये विषयों की व्यवस्था बनाये रखने हेतु सर्वप्रथम राज्य सचिवालय है। राज्य स्तर पर ही विभिन्न विभागों के संचालनालय/ विभागाध्यक्षों के कार्यालय है। पश्चात् संभाग स्तर, जिला स्तर, उप-खण्ड स्तर, तहसील स्तर एवं विकासखंड स्तर पर योजनाओं और नीतियों के क्रियान्वयन हेतु सभी विभागों के अपने-अपने कार्य तथा कार्यक्रम के अनुसार संगठन हैं।

सचिवालय कार्य विभिन्न विभागों में बांटा गया है। प्रत्येक विभाग में अनुभाग का निर्माण किया गया है। कार्य बँटवारा हेतु भारत के संविधान के अनुच्छेद 166 के खण्ड 2 और 3 द्वारा शक्तियों को प्रयोग में लाते हुए छत्तीसगढ़ के राज्यपाल द्वारा छत्तीसगढ़ शासन कार्य आवंटन नियम 2005 बनाया गया है। छत्तीसगढ़ में मातृप्रदेश मध्यप्रदेश से पृथक विभिन्न विभागों के कार्य को देखते हुए विभागों के समूह बनाये गये हैं। जिसका वर्णन पूर्व में किया गया है। इन नियमों में यह व्यवस्था है कि गठित प्रत्येक विभाग के लिए अविभाजित मध्यप्रदेश में दिनांक 2.11.2002 को प्रचलित शासन के कार्य आवंटन नियम केवल उस सीमा तक अपनाये जायें जिस सीमा तक छत्तीसगढ़ राज्य के विभागों के विषय एवं कार्यक्षेत्र अंतर्निहित हैं।

राज्यपाल, सचिवालय के प्रत्येक विभाग को या विभाग के कार्य की किसी भी मद को किसी मंत्री के प्रभार में देते हुए, शासन के कार्य को मंत्रियों के बीच आवंटित करेंगे।

* सहायक प्राध्यापक, लोक प्रशासन (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

सचिवालय के प्रत्येक विभाग में एक शासन का प्रमुख सचिव/ सचिव होंगे, जो कि विभाग तथा उसके अधीनस्थ ऐसे अन्य अधिकारियों तथा शासकीय सेवकों का, जैसा कि शासन अवधारित करे, शासकीय प्रमुख होगा।

छत्तीसगढ़ शासन के आदेश से या उसकी ओर से किये गये समस्त आदेश या निष्पादित कल गई समस्त लिखते इस रूप में अभिव्यक्त की जायेगी कि वे छत्तीसगढ़ के राज्यपाल के नाम से तथा आदेशानुसार किये गये हैं।

उन मामलों के सिवाय जिनमें किसी अधिकारी को छत्तीसगढ़ शासन के किसी आदेश या लिखित पर हस्ताक्षर करने के लिए विशेष रूप में सशक्त किया गया हो, प्रत्येक ऐसा आदेश या लिखित छत्तीसगढ़ शासन के या तो मुख्य सचिव, अपर मुख्य सचिव, प्रमुख सचिव, सचिव, विशेष सचिव, संयुक्त सचिव, उप-सचिव या अवर सचिव द्वारा हस्ताक्षरित किया जायेगा तथा ऐसे हस्ताक्षर होने पर यह समझा जायेगा कि यह आदेश या लिखित उचित रूप से प्रमाणीकृत है।

शासन को भेजा जाने वाला प्रत्येक पत्र शासन के उस विभाग के प्रमुख सचिव/ सचिव को संबोधित किया जायेगा, जिससे पत्र की विषयवस्तु संबंधित हो।

कार्य आवंटन नियम में उल्लिखित प्रत्येक विभाग कार्यपालक शासन के कार्य नियमों के अनुसार संचालित किये जायेंगे।

प्रत्येक अनुभाग में एक अनुविभागीय अधिकारी दो सहायक 3 उच्च श्रेणी लिपिक तथा 6 निम्न श्रेणी लिपिक होंगे। अनुभाग में कार्यरत कर्मचारी तथा उनके अवर सचिव सचिवालयिन कार्यपद्धति के प्रावधान के अनुसार अपने कर्तव्यों को निष्पादन करेंगे। सचिवालयिन कार्य पद्धति में बड़े विस्तार से अनुविभागीय अधिकारियों के कर्तव्य, सहायक/ उच्च श्रेणी लिपिक के कर्तव्य और दायित्व, नस्तियों को तैयार करने तथा उसे प्रस्तुत करने, प्रकरणों की त्वरिता दर्शाते हुये झण्डियों का उपयोग, विलम्ब पर रोकथाम निपटाये गये प्रकरण की सूची, आलेखन, कार्यालय आदेश फाइल स्थायी आदेश फाइल, संग्रह फाइल तथा विभागीय आदेश पुस्तिका, स्मरण पत्रों का जारी किया जाना नस्तियों का अभिलेखन, केस फाइल रजिस्टर, इन्डेक्स रिकार्ड लिपिक, पत्रों के प्रकार तथा नस्तियों का त्वरित निराकरण के संबंध में विस्तृत निर्देश दिये गये हैं।

शासन के कार्यपालक नियमों में यह व्यवस्था है कि शासन कार्य नियम के भाग 4 में इन नियमों को, के नियम 10 के अन्तर्गत जारी किये गये निर्देश के अनुसार भाग चार में मुख्यमंत्री जी को 52 प्रकार के प्रकरण प्रस्तुत किये जावेंगे, उनमें प्रमुख हैं- 1. अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों की सेवा-शर्तें, 2. इनके अनुशासनिक प्रकरण, 3. राज्य की शांति या अशांति गंभीर रूप से प्रभावित होने पर, 4. पुलिस दल में वृद्धि के प्रकरण, 5. प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों की सेवा-शर्तें, उन्हें पदच्युत करना आदि, 6. अखिल भारतीय संवर्ग धारण करने वाले किसी अधिकारी के गोपनीय प्रतिवेदन में प्रतिकूल अभियुक्त दर्ज करना हो आदि। 7. समस्त परिपत्र जिसमें महत्वपूर्ण सिद्धान्त या परिवर्तन समाविष्ट हो, 8. अशासकीय विधेयको पर शासन की नीति संबंधी, 9. विभिन्न विभागों से ऐसे मामले जिनमें संबंधित विभागों में सहमति न हों, 10. दया के लिये याचिकायें, दण्ड प्रक्रिया की संहिता धारा 432, 433, 435 के अधीन छूट के मामले, 11. राजपत्रित अधिकारियों को 70 वर्ष की आयु तक रखने के मामले, 12. प्रशासनिक प्रणाली के नीति विषयक मामले, 13. नगर पालिकाओं के विघटन के मामले, 14. नगरों, नदियों, रेलवे स्टेशनों के नामों के परिवर्तन के मामले, एवं 15. ऐसे विशेष मामले जिसे मुख्यमंत्री, मुख्य सचिव के माध्यम से किसी विभाग से प्रस्तुत करने के ओदश दें।

सचिवों के लिये प्रक्रिया कार्य नियम 13 के अंतर्गत दी गई है। विभागीय सचिव जिसका तात्पर्य विशेष सचिव, अवर सचिव, संयुक्त सचिव से है, मुख्यमंत्री जी या भारसाधक मंत्री के आदेश से नेमी प्रकरणों का निपटारा कर सकते हैं जो नीति के न हो या नीति निर्धारित हो चुकी हो अन्यथा मंत्री के आदेश आवश्यक होंगे तथा, ऐसे समस्त निपटाये गये प्रकरणों का निपटारा शासन द्वारा समझा जायेगा। इसमें पक्षकारों की सुनवाई, मोटर यान अधिनियम 1939, की धारा 68 वीं के अधीन किसी योजना का अनुमोदन करना आदि भी माना जायेगा। ऐसे मामलों की सूची भारसाधक मंत्री को प्रस्तुत की जायेगी। ऐसे मामलो की ओर भी सचिव द्वारा भारसाधक मंत्री जी का ध्यान आकर्षित किया जायेगा जिसको मुख्यमंत्री जी को प्रस्तुत करना आवश्यक है।

मंत्रियों के लिये प्रक्रिया- मंत्रियों को प्रस्तुत किये जाने वाले मामलों पर- 1. वे उन पर तत्काल आदेश देंगे। 2. निर्देश दे सकेंगे कि मंत्री परिषय के समक्ष लाये जाने के संबंध में मुख्यमंत्री के आदेश प्राप्त कर ले। समस्त मामले विभागीय सचिव को अंकित किये जायेंगें। मंत्रियों द्वारा लिखित कार्य वृत्त (मिनट) स्थाई अभिलेख के रखा जायेगा। मंत्री,

वित्त विभाग के कागज पत्रों को छोड़कर किसी भी अन्य विभाग के कागज पत्रों, यदि वे मामले को निपटाने में आवश्यक हो, देखने के लिये माँग सकेगा तथा यदि वह आगे की कोई कार्यवाही उक्त कागजों/ पत्रों पर कराना चाहता हो तो इस प्रकार का प्रतिवदेन भार साधक मंत्री को करेगा तथा असहमति की स्थिति में दोनों कागजात को रखे जाने के पूर्व उन पर कोई टिप्पणी अभिलिखित नहीं करेगा।

सम्पर्क प्रक्रिया- किसी विषय या मामले के लिये कि यह किस विभाग का है, इस बारे में मुख्य सचिव का निर्णय अंतिम होगा। ऐसे मामलों में जहाँ दो से अधिक भारसाधक मंत्री सहमत न हों उन पर मुख्यमंत्री जी का निर्णय अंतिम होगा। जहाँ किसी मामले या विषय का संबंध कई विभागों से हो तब ऐसे मामलों पर वैधानिक विचार-विमर्श कर सहमति स्वरूप टीप फाइल में अभिलिखित की जायेगी। ऐसे प्रकरण के असहमति की स्थिति में भारसाधक मंत्री अन्य मंत्रियों को चर्चा करने के लिए बुलायेगा तथा असहमति होने पर टीप अभिलिखित की जायेगी एवं यदि वे सहमत नहीं पाये गये तो असहमति का प्रत्येक मुद्दा तथा प्रत्येक मंत्री की सिफारिश अभिलिखित की जायेगी। मामला आगे बढ़ाने के लिये भारसाधक मंत्री इसे परिषद् के समक्ष प्रस्तुत करेगा। मुख्य सचिव, मुख्यमंत्री जी या किसी मंत्री के आदेश से या स्वप्रेरणा से किसी विभाग से किसी भी मामले से संबंधित प्रकरण बुला सकेगा तथा परीक्षण करने के बाद संबंधित मंत्री या मुख्यमंत्री को प्रस्तुत करेगा।

मंत्रिपरिषद् के लिये प्रक्रिया- परिषद् की बैठकें मुख्यमंत्री जी के आदेश से आयोजित की जायेगी तथा परिषद् सचिव (मुख्य सचिव) स्थान, कार्य सूची तथा समय के बारे में मंत्रियों को ठीक समय पर सूचित करेंगे। परिषद् सचिव बैठक के तीन दिन पूर्व उन मामलों की सूची प्रस्तुत करेंगे, जिनकी संक्षेपिकायें परिचालित कर दी गई हों। किसी मंत्री के दौरे पर होने की स्थिति में कार्य सूची में दिये गये किसी मामले को मुख्य सचिव उक्त मंत्री के वापर आने तक मुख्यमंत्री के आदेश से चर्चा स्थगित रखने के आदेश प्राप्त कर सकते है। परिषद् के समक्ष रखें गये मामलों पर सम्मति मौखिक या लिखित हो सकती है। दोनों में से किसी स्थिति में मंजूरी संक्षेपिकाओं में दर्ज की जावेगी। मंत्रिपरिषद् के लिये कोई भी संक्षेपिकायें तब तक परिचालित नहीं की जावेगी जब तक मुख्यमंत्रीजी की अनुमति प्राप्त न हों। संक्षेपिकायें समस्त मंत्रियों एवं मुख्य सचिव, राज्यपाल को बंद लिफाफे में भेजी जावेगी तथा संबंधित फाईल बाद में मुख्य सचिव के पास प्रस्तुत की जायेंगी। संक्षेपिका का विषय सुस्पष्ट होना चाहिये ताकि वस्तुस्थिति समझ में आ सके। इसमें मामले के तथा निर्णय के मुद्दे आदि स्पष्ट रूप में अंकित होने चाहिये। ऐसे मामलों पर मंत्रिपरिषद् में लाये जाने के पूर्व संबंधित मंत्रियों की चर्चा हो जानी चाहिये तथा संयुक्त सिफारिश संक्षेपिका में अंकित होना चाहिये तथा वित्तीय मामलों के प्रश्नों पर वित्त विभाग को संक्षेपिका दिखाना चाहिये। अत्यधिक आवश्यक मामला 48 घण्टे की सूचना से मंत्रिपरिषद् द्वारा विचार किया जा सकेगा। विभागीय सचिव मामले के विचार के समय परिषद् की बैठक में उपस्थित रहेंगे। किसी मामले पर निर्णय होने पर उसे सुना दिया जायेगा तथा बाद में उसे अभिलिखत किया जायेगा। इस अनुप्रमाण मुख्य सचिव द्वारा किया जायेगा जिसकी एक प्रति राज्यपाल को भेजी जायेगी।

भारत शासन से प्राप्त महत्वपूर्ण पत्रों की प्रति प्रभारी मंत्री को भेजी जायेगी।

संबंधित सचिव प्रत्येक मामले में कार्य नियम में उल्लेखित निर्देशों के पालन के लिये उत्तरदायी होगा।

यद्यपि कार्य आवंटन नियम में विभाग समूह बनाये गये हैं तथा प्रत्येक विभाग को कार्य का पृथक-पृथक बंटवारा किया गया है। मंत्रालय भ्रमण तथा मंत्रालय के अधिकारियों से चर्चा उपरांत मंत्रालय की कार्यप्रणाली को प्रभावी ढंग से समझने के लिये मंत्रालय के विभागों का मेरे द्वारा काल्पनिक बंटवारा किया गया है, जो निम्नानुसार है :

(I) नियामक विभाग; 1. सामान्य प्रशासन विभाग, 2. वित्त विभाग, 3. विधि एवं विधायी विभाग।

उपरोक्त नियामक विभाग संचिवालय के समस्त प्रकाशकीय विभाग के नियमन तथा नियंत्रण का कार्य करते हैं। सामान्य प्रशासन विभाग विभिन्न विभागों के कार्य संपादन के लिये सचिवालयिन पद्धति तथा शासन के कार्यपालिक नियम तथा कार्य बँटवारे हेतु कार्य आवंटन नियम बनाता है। इसके अलावा राज्य लोक सेवा के संबंध में सेवा नियम भी सामान्य प्रशासन विभाग बनाता है। आरक्षण नियम भी सामान्य प्रशासन विभाग का विषय आरक्षण में वर्टिकल आरक्षण (यथा अनारक्षित, पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों का निर्धारित प्रतिशत के अनुसार आरक्षण) एवं हॉरीजेन्टल आरक्षण (यथा महिला आरक्षण, विकलांक आरक्षण, भूतपूर्व सैनिकों का आरक्षण, स्वतंत्रता

संग्राम सेनानियों का आरक्षण इत्यादि)। भ्रष्ट आचरण निवारण अधिनियम, पदोन्नति नियम, आचरण नियम, वर्गीकरण नियंत्रक तथा अपील नियम लोक सेवा आयोग के संबंध में विभागीय जांच अधिनियम इत्यादि भी सामान्य प्रशासन विभाग का विषय है।

वित्त विभाग की प्रक्रिया; वित्त विभाग शासन द्वारा स्वीकृत ऋणों से संबंधित लेखे का प्रभारी होगा। अकाल निधि, सुरक्षा तथा उपयोग तथा भविष्य निधि के लिये उत्तरदायी होगा। गांरटी देना, ऋण देना, उनके व्यय आदि का भी वित्त विभाग प्रभारी रहेगा। वित्त विभाग का यह भी दायित्व होगा कि अन्य विभागों, उप-विभागों आदि के लिये वित्तीय मामलों पर नियम बनायें। प्रतिवर्ष राज्य की आय-व्यय का बजट तैयार करना, नवीन पदों के प्रकरणों का परीक्षण तथा सलाह देना एवं वर्ष के दौरान शेषों की स्थिति पर नजरी रखना, के लिये भी यही विभाग उत्तरदायी होगा। करारोपण के प्रस्ताव तथा राजस्व के संग्रहण के लिये उत्तरदायी होगा। विभागों को संग्रहण प्रगति तथा पद्धतियों के संबंध में सलाह देगा। शासन के विभागों पर व्यय का नियंत्रण का उत्तरदायित्व भी विभाग का होगा।

विधि विभाग की प्रक्रिया; कार्य नियमों के अंतर्गत प्रसारित निर्देशों के भाग 5 में विधान बनाने के प्रस्ताव कैसे तैयार किये जायेंगे, बताया गया है। विधान बनाने का पूरा दायित्व प्रशासकीय विभाग का है। विधि विभाग का मुख्य कार्य उन विधि प्रारूपों को तकनीक स्वरूप प्रदान करना है जिनकी नीति अनुमोदित कर दी गई हो। विधान बनाने के प्रस्ताव पर सर्वप्रथम विधि विभाग की राय लेनी आवश्यक है कि विधिक दृष्टि से प्रस्तावित विधान की आवश्यकता है एवं राज्य विधान मण्डल को अधिनियमित करने की क्षमता है या नहीं। इस प्रकार की कार्यवाही कर प्रकरण मुख्यमंत्री जी को प्रस्तुत किया जायेगा तथा मंत्रिपरिषद् के आदेश प्राप्त कर प्रशासनिक विभाग प्रारूप विधेयक पर विधान सभा द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही करेगा।

इसके अतिरिक्त विधि विभाग विधि का कोई प्रश्न उद्भूत होने पर प्रशासकीय विभागों को विधिक सलाह देता है। इसके अतिरिक्त उच्च न्यायालय, सर्वोच्च न्यायालय तथा विभिन्न अभिकरणों एवं न्यायालयों में शासन के विरूद्ध प्रस्तुत प्रकरणों, विवादों, याचिकाओं इत्यादि के संबंध में शासन का पक्ष प्रस्तुत करने हेतु स्टैण्डिंग कौन्सिल, शासकीय अधिवक्ताओं, महाधिवक्ता की नियुक्ति का कार्य, प्रतिरक्षण आदेश जारी करने, प्रकरणों के प्रभारी अधिकारी नियुक्त करने संबंधी नियम बनाने का कार्य करता है।

उपरोक्त तीनों नियामक विभागों से शासन के संचालनालय, विभागाध्यक्ष कार्यालय सीधे पत्र व्यवहार या प्रकरणों/ नस्तियों को प्रस्तुत नहीं कर सकते, इस हेतु उन्हें इन विभागों से परामर्श/ आदेश प्राप्त करने हेतु अपने प्रशासकीय विभाग के माध्यम से प्रस्ताव प्रस्तुत करना होता है।

(II) निर्माण विभाग; 1. लोक निर्माण विभाग, 2. जल संसाधन विभाग, 3. लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग, 4. आवास पर्यावरण विभाग, 5. आयातित विभाग, 6. ग्रामीण यांत्रिकी सेवा विभाग।

विभागों के नामों से सुस्पष्ट है कि अपने-अपने क्षेत्र में अधोसंरचना के निर्माण उनका रखरखाव का कार्य करता है। यथा लोक निर्माण विभाग भवन, सड़क, पुल-पुलिया इत्यादि के निर्माण कार्य, जल संसाधन विभाग नहर, एनीकट, बांध, बनाने का कार्य, लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग पेयजल आपूर्ति हेतु पानी टैंक बनाने तथा जल आपूर्ति हेतु पाइप लाईन बिछाने, हैण्डपम्पों की खुदाई इत्यादि का काम करता है। आवास पर्यावरण विभाग आबादी के विस्तार के नियमन हेतु मास्टर प्लान बनाता है तथा आम जन के उपयोग हेतु भवन निर्माण का शासकीय दर पर उनको आम जन को उपलब्ध कराता है। ग्रामीण यांत्रिकी सेवा विभाग ग्रामीण स्तर पर सड़क, गली, चौराहा, नाली, छोटी पुल-पुलिया, स्कूल भवन, आंगनबाड़ केन्द्र, सामुदायिक भवन इत्यादि के निर्माण कार्य करता है।

(III) शासन के कल्याण कार्य, सामाजिक न्याय तथा मानव संसाधन विकास से संबंधित विभाग; 1. धार्मिक न्यास एवं धर्मस्व विभाग, 2. खेल एवं युवा कल्याण विभाग, 3. पंचायत एवं समाज कल्याण विभाग, 4. कृषि विभाग, 5. सहकारिता विभाग, 6. लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, 7. स्कूल शिक्षा विभाग, 8. आदिम जाति कल्याण विभाग, 9. संस्कृति विभाग, 10. पर्यटन विभाग, 11. महिला एवं बाल विकास विभाग, 12. उच्च शिक्षा विभाग, 13. तकनीकी शिक्षा विभाग, 14. जनशक्ति नियोजन विभाग, 15. विज्ञान एवं टेक्नॉलाजी विभाग, 16. चिकित्सा शिक्षा विभाग, 17. सूचना प्रौद्योगिकी एवं जैव प्रौद्योगिकी विभाग, 18. पशुधन विकास विभाग, 19. मछली पालन विभाग, 20. खाद्य नागरिक आपूर्ति एवं उपभोक्ता संरक्षण विभाग।

उपरोक्त सभी विभाग कल्याणकारी कार्यों में लगे हुए हैं। यथा प्राथमिक शिक्षा माध्यमिक शिक्षा तथा हायर सेकेण्डरी एजुकेशन हेतु स्कूल खोलना तथा स्कूलों में अध्ययन तथा अध्यापन हेतु समुचित व्यवस्था करना। आईटीआई एवं पॉलिटेक्निक संस्थानों के माध्यम से व्यवसायिक शिक्षा देना इनके अधोसंरचना का निर्माण तथा विकास का काम व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त युवकों का रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने का कार्य तथा उच्च तकनीकि शिक्षा हेतु इंजीनियरिंग कॉलेज इत्यादि का निर्माण तथा शिक्षा की व्यवस्था करना। धार्मिक न्यासों का निर्माण तथा जहाँ न्यास नियमानुसार कार्यवाही नहीं कर रहे है वहाँ मंदिर, देवालयों, मठों का न्यास नियम के अनुसार संचालन तथा जीर्णोद्धार इत्यादि कार्य किये जाते हैं। खेल एवं युवा कल्याण के अंतर्गत खेलों को बढ़वा देना उनका प्रोत्साहन करना, खेलों का आयोजन तथा उत्कृष्ठ खिलाड़ियों का नियोजन, खिलाड़ियों की कोचिंग के लिये कोच तथा अकादमी की व्यवस्था स्टेडियम का निर्माण इत्यादि काम किये जाते है। पंचायत एवं समाज कल्याण के अंतर्गत निराश्रितों को पेंशन विकलांगों की सहायता तथा नियम कानून के अनुसार समाज कल्याण में लगे स्वयं सेवी संस्थाओं को अनुदान का वितरण इत्यादि।

विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से हितग्राही मूलक योजनाओं का क्रियान्वयन समाज के अंतिम छोर के व्यक्ति को अनुदान सहायता, ऋण सहायता इत्यादि उपलब्ध कराना तथा इनके कल्याण एवं संरक्षण हेतु कानून, नियम, परिनियम बनाना तथा उनका समूचित क्रियान्वयन सुनिश्चित करना, इनके विकास हेतु आवश्यक अधोसंरचना, बाजार की उपलब्धता इत्यादि की व्यवस्था।

(IV) 1. वाणिज्य एवं उद्योग विभाग, 2. ग्रामोद्योग विभाग, 3. खनिज संसाधन विभाग, 4. उर्जा विभाग, 5. सार्वजनिक उपक्रम विभाग, 6. विमानन विभाग।

उद्योगों, ग्रामोद्योग, खनिज संसाधनों का दोहन, विद्युत उत्पादन, वैकल्पिक उर्जा, वाणिज्य इत्यादि के प्रदेश में नियमन एवं नियंत्रण हेतु आवश्यक कानून/ नियम बनाना। प्रोत्साहन हेतु स्थापना हेतु भू-अर्जन कर भूमि उपलब्ध कराना तथा करों में छूट के लिये विचार कर आवश्यकता होने पर छूट प्रदान करना इत्यादि।

(V) 1. गृह विभाग, 2. जेल विभाग, 3. वन विभाग, 4. राजस्व विभाग, 5. परिवहन विभाग, 6. श्रम विभाग।

उपरोक्त विभाग अपने विभाग से संबंधित विषयों के संबंध में स्थापित विधि का आम जन से पालन कराने हेतु ग्राम से लेकर जिला स्तर तक संगठन बनाकर कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने का काम तथा जन सामान्य के विवादों का विधि सम्मत निपटारा का काम उपरोक्त विभागों का है।

(VI) 1. वाणिज्य कर विभाग, 2. वन विभाग।

(VII) 1. नगरीय प्रशासन एवं विकास विभाग, 2. पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग।

संचालनालय का संगठन

संचालनालय का शीर्ष अधिकारी संचालक/ आयुक्त होता है। संचालक/ आयुक्त के अधीनस्थ अपर संचालक, संयुक्त संचालक, उप-संचालक तथा सहायक संचालक होते हैं। सहायक संचालकों के अधीनस्थ कार्यालय अधीक्षक सहायक ग्रेड- 1, 2, 3 तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी होते है। संचालक अपने विवेक से विभिन्न अधिकारियों एवं कर्मचारियों के बीच कार्य विभाजन करता है।

संचालनालय का मुख्य कार्य जमीनी स्तर के प्रशासनिक एक को तथा यथा संभागीय कार्यालय, जिला कार्यालय, विकास-खंड स्तरीय कार्यालय तथा ग्राम स्तर पर पदस्थ कर्मचारियों के पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण का कार्य करता है। भारत शासन तथा राज्य शासन के योजनाओं का क्रियान्वयन कराया जाना संचालनालय के ही जिम्मेदारी है। संचालनालय अपने अधीनस्थ प्रशासनिक एककों से योजनाओं के क्रियान्वयन का कार्य संपादित करती है। क्रियान्वयन हेतु राज्य सरकार से प्राप्त बजट का पुनर्वितरण भी संचालनालय के द्वारा किया जाता है। हितग्राही मूलक योजनाओं के अनुदान सहायता या अन्य सहायता हितग्राहियों के खाते में जमा कराये जाने की जिम्मेदारी संचालनालय तथा उसके प्रशासनिक एककों की है।

सचिवालय तथा संचालनालय का संबंध

संचालनालय के अधिकार सीमित हैं, शासन स्तर से जिन कार्यों को सम्पन्न कराया जाना है उन कार्यों का प्रस्ताव संचालनालय को राज्य शासन को भेजना पड़ता है। संचनालय निम्नांकित के प्रस्ताव अपने प्रशासकीय विभाग को प्रेषित करेंगे- '1. नई परियोजनाओं की स्वीकृति, 2. नितिगत विषयों पर निर्णय, 3. स्थाई परिसम्पत्तियों की खरीदी, 4. बजट आबंटन, 5. आबंटित बजट का पुनर्विनियोजन, 6. कार्मिक नियमों में परिवर्तन, 7. विधायी कार्य, 8. प्रचलित नियम एवं नितियों में परिवर्तन/ संसोधन, 9. विभागीय सेटअप स्वीकृत करना, 10. स्वीकृत सेटअप में फेरफार करना, 11. नई प्रशासनिक ईकाइयों का गठन, 12. नया पद निर्माण, 13. ऐसे समस्त वित्तीय मामले वित्त संहिता के अनुसार जिनका कि अधिकार विभागीय सचिव अथवा विभाग के भारसाधक मंत्री को प्रदत्त है। 14. प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों के विरूद्ध अनुशासिक कार्यवाही जिनका अधिकार राज्य शासन को है। 15. ऋणों पर गारंटी, 16. वित्तिय नियम/ सेवा नियमों के निर्वचन के प्रकरण, 17. विभिन्न न्यायालयों में लंबित प्रकरणों में प्रतिरक्षण आदेश/ अपील की अनुमति पुनरीक्षण याचिका की अनुमति, 18. केन्द्र पोषित योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु आबंटन की मांग तथा उपयोगिता प्रमाण पत्र, 19. राज्य स्तर के निविदाओं का प्रस्ताव, 20. वित्तिय नियमों के अनुसार विभिन्न कार्य के संपादन हेतु प्रशासकीय स्वीकृति, 21. भंडार क्रय नियमों से सकारण छूट का प्रस्ताव।

संचालनालय से प्रस्ताव प्राप्त होने पर मंत्रालय में संबंधित संचालनालयों के प्रशासकीय विभाग प्राप्त अधिकारों के अनुसार उसका निराकरण करेंगे तथा यथास्थिति सामान्य प्रशासन विभाग/ वित्त विभाग/ विधि एवं विधायी कार्य विभाग से परामर्श/ आदेश प्राप्त कर प्रकरण के संबंध में समुचित निर्णय लेंगे।

संदर्भ

भारत के संविधान के अनुच्छेद 166 के खण्ड 2 और 3
छत्तीसगढ़ शासन कार्य आवंटन नियम 2005
दण्ड प्रक्रिया की संहिता धारा 432, 433, 435
मोटर यान अधिनियम 1939

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,47-50**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 24 फरवरी 2015

विज्ञानभिक्षु का समन्वयवादी दर्शन : एक समीक्षात्मक विवेचन

डॉ. किरण कुमारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *विज्ञानभिक्षु का समन्वयवादी दर्शन : एक समीक्षात्मक विवेचन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *किरण कुमारी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारतीय दर्शनजगत् में समन्वयवादी दार्शनिक विज्ञानभिक्षु का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। जिस काल और सामाजिक परिवेश में आचार्य विज्ञानभिक्षु का उदय हुआ था, उसमें वैदिक सभ्यता, संस्कृति, धर्म और दर्शन पर शासकों का चौतरफा आक्रमण और आघात हो रहा था, इसलिए विघटन और विगलन की आशंका प्रबल हो गई थी। वेदमूलक दार्शनिक संप्रदायों के बीच भी गहरे पारस्परिक मतभेद थे। ऐसी विषम परिस्थिति में विज्ञानभिक्षु ने विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों के बीच एकता एवं समन्वय लाने का श्लाघनीय और प्रशंसनीय प्रयास किया है। इस दिशा में वाचस्पति मिश्र और मधुसूदन सरस्वती ने भी पर्याप्त कार्य किया है और इसके द्वारा षट् दर्शनों के पारस्परिक विरोध को दूर करने का प्रयास किया है, लेकिन वे एक सम्प्रदाय विशेष के प्रति अपने अतिशय आदरभाव एवं प्रतिबद्धता के कारण इसमें पूर्णतः सफल नहीं हो सके। महान् दार्शनिक विज्ञानभिक्षु ने सांख्य, योग, एवं वेदान्त का समन्वित रूप को पूर्ण दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया है।

16वीं शताब्दी में प्रादुर्भूत विज्ञानभिक्षु बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न और समन्वयवादी दार्शनिक थे। उन्होंने दर्शन के विविध विधाओं का चिन्तन किया है और अपनी समन्वयात्मक दृष्टि द्वारा सांख्य, योग एवं वेदान्त दर्शनों के प्रतिपाद्य विषयों को एकीकृत किया है। एतदर्थ तीनों दर्शनों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन किया है। आफ्रेक्ट महोदय ने उनके द्वारा रचित 18 ग्रन्थों की सूची दी है, जिसमें कतिपय संदेहमुक्त हैं- सांख्यप्रवचनभाष्य, सांख्यसार, योगवार्तिक, योगसारसंग्रह, ब्रह्ममीमांसाभाष्य, उपदेशरत्नमाला, ब्रह्मादर्श एवं श्रुतिभाष्यादि आचार्य विज्ञानभिक्षु के ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। विज्ञानभिक्षु ने 'श्रुतिभाष्यादि'[1] के द्वारा जिन उपनिषद् ग्रन्थों का संकेत किया है तथा जिनकी पाण्डुलिपि भी उपलब्ध है, उनकी संख्या एकाधिक है। संभवतः आठ उपनिषदों का सामूहिक नाम ''वेदान्तालोक'' है। ''वेदान्तालोक'' की पुष्पिका में कहा गया है, ''इति विज्ञानभिक्षुकृते वेदान्तालोके प्रश्नोपनिषदालोकः समाप्तः''। आचार्य विज्ञानभिक्षु ने अपने ग्रन्थों में पुराणों से व्यापक मात्रा में उद्धरण प्रस्तुत किया है। वस्तुतः उन्होंने पुराणों को श्रुतियों जैसी प्रामाणिकता प्रदान की है। इनके सर्वाधिक ग्रन्थ सांख्य, योग, और

* अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, डॉ. एस. के. सिन्हा महिला महाविद्यालय मोतिहारी (बिहार) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वेदान्त दर्शनों से संबंधित हैं। अतः उनके ग्रन्थों का विषयवार वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है- *(i) सांख्य दर्शन :* (1) सांख्य प्रवचनभाष्यम्, (2) सांख्यसारः। *(ii) योगदर्शन :* (1) योगसार संग्रहः, (2) योगवार्तिक। *(iii) वेदान्तदर्शन :* (1) बह्म-भीमांसाभाष्यम्, (2) ईश्वरगीताभाष्यम्, (3) उपनिषदरत्नमाला, (4) ब्रह्मादर्श, (5) कठवल्लुपनिषदालोकः, (6) कैवल्पोपनिषदालोकः, (7) मैत्रयेयुपनिषदालोकः, (8) माण्डक्योपनिषदालोकः, (9) मुण्डकोपनिषदालोकः, (10) प्रश्नोपनिषदालोकः, (11) तैतिरीयोपनिषदालोक, (12) श्वेताश्वतरोपनिषदालोकः।

इस प्रकार विज्ञानभिक्षु की कृतियों में दो ग्रन्थ सांख्य दर्शन के, दो योगदर्शन के तथा सर्वाधिक 12 ग्रन्थ वेदान्त दर्शन के हैं।

आचार्य विज्ञानभिक्षु ने सांख्य दर्शन के मूलाधार सांख्यसूत्रों पर भाष्य लिखा है। आचार्य ने इसके द्वारा सांख्य सूत्रों की लुप्त होती जा रही लोकप्रियता को पुनर्जीवित करने का श्लाघनीय कार्य किया है। इस प्रकार उन्होंने कालकवलित सांख्य शास्त्र का उद्धार किया है।[2] उन्होंने सांख्यसूत्रों को अपने भाष्यग्रथों का आधार बनाकर भी सांख्यकारिका की उपेक्षा नहीं की है, प्रत्युत इसे पूर्ण श्रद्धा एवं प्रामाणिकता के साथ अनेकानेक स्थलों पर प्रस्तुत भी किया है।[3] वस्तुतः कपिलसूत्रों को प्रकाश में लाना और बोधगम्य बनाना ही इनका मूल उदेद्श्य है। विज्ञानभिक्षु ने सांख्य प्रवचनभाष्य, सांख्यसूत्रों पर लिखा है। ''सांख्य प्रवचनभाष्य'' का उदेद्श्य सांख्यसम्मत पुरूष का यथार्थ स्वरूप-निर्धारण करना है। सांख्य की महत्ता है- पुरूष-प्रकृति-विवेक का प्रतिपादन, न कि ईश्वर-प्रतिषेध।[4] विज्ञानभिक्षु ने 'सांख्यसार' नामक ग्रन्थ में मोक्ष विवेकख्याति, प्रकृति और उसके विकारों के एकरूप को प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त पुरूष के स्वरूप, अनात्म पदार्थो से उसके वैधर्म्य, राजयोग रूपी साधनामार्ग एवं जीवनमुक्ति तथा विदेहमुक्ति के स्वरूप का सविस्तार वर्णन किया है। इसमें सांख्य, योग और वेदान्त दर्शनों के समन्वय का भी स्तुत्य प्रयास किया है।

आचार्य विज्ञानभिक्षु योग के महत्त्व एवं उपादेयता के प्रति पूर्णतः अश्वस्त थे। वस्तुतः वे इसे ही एक-मात्र पूर्ण दर्शन मानते थे। उन्हें योग समस्त वेदों का सार प्रतीत होता था- ''सर्ववेदार्थ सारोऽत्र वेदव्यासेन भाषितः'',[5] उनके अनुसार मुक्ति की इच्छा रखनेवालों की एक मात्र गति योगशास्त्र में ही है- ''मुमुक्षूणामिंद गतिः'' मानवजीवन में योग के व्यापक महत्व के प्रति पूर्ण विश्वास ही वह उत्प्रेरक शक्ति रही होगी। जिसके कारण उन्होंने 'योगसूत्रभाष्य' पर अपनी लेखनी उठाई होगी। योगसूत्रभाष्य पर आचार्य की रचना 'योगवार्तिक' है। चार भागों में विभक्त इस ग्रन्थ में योगशास्त्र के शब्दों की व्युत्पत्ति के द्वारा अर्थ बताने का प्रयास किया गया है। सांख्य और योग दर्शनों की तुलनात्मक विवेचना को भी प्रस्तुत किया गया है। 'योगसार-संग्रह' में अमृतरसधार का सार तत्व प्रस्तुत किया है ''वार्तिकाचल दण्डेन मथित्वा योगसारम्''।[6] असाधारण प्रतिभासम्पन्न मनीषी आचार्य विज्ञानभिक्षु ने वेदान्तदर्शन पर सर्वाधिक ग्रन्थों का लेखन किया है। उन्होनें सूत्र, उपनिषद् और गीता तीनों पर भाष्य लिखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने अपनी रचना 'उपदेशरत्नमाला' में ब्रह्म के चिन्मय स्वरूप का प्रतिपादन किया है तथा उसकी आनन्दरूपता का खण्डन किया है। यहॉ सर्वप्रथम वेदान्त की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की है, जिसमें सांख्य दर्शन वेदान्त दर्शन का स्थान ग्रहण करता हुआ दिखाई पड़ता है। वेदान्त दर्शन के प्रायः सभी सिद्धान्तों की व्यापक विवेचना भी की गई है। 'विज्ञानामृतभाष्य' वादरायण के 'ब्रह्मसूत्र' का भाष्य है। 'ब्रह्मसूत्र' पर लिखे गए विभिन्न भाष्यों में रामानुजाचार्य के 'श्रीभाष्य' के बाद सबसे वृहद् यही भाष्य है। उसमें चिन्मात्र ब्रह्म की चिद्रूप जीव तथा चिद्रूप प्रकृति शक्तियों का निरूपण है। यहॉ शंकर के एकाधिकमतों का दृढ़तापूर्वक खण्डन भी किया गया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ खण्डन-मण्डन से परिपूर्ण है।

'उपनिषदभाष्य' में विज्ञानभिक्षु ने अनेक उपनिषदों पर भाष्य लिखा है। 'ईश्वरगीताभाष्य' भगवद्गीता से भिन्न है। इसे शिवगीता या उत्तरगीता भी कहा गया है, क्योंकि इसमें भगवान् शिव द्वारा बदरिकाश्रम में एकत्र सनत्कुमार आदि ब्रह्मज्ञानियों को दिये गये वेदान्तविषयक उपदेश है। ब्रह्म को इस ग्रन्थ में विश्व का अधिष्ठाता बतलाया गया है। ब्रह्मादर्श नामक ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म या ईश्वर ही है। इस प्रकार विज्ञानभिक्षु ने ब्रह्म की सत्ता का महत्व सर्वोपरि स्थापित करने का सफल एवं श्लाघनीय प्रयास किया है तथा इस कार्य में उन्हें प्रंशसनीय सफलता भी मिली है।

समन्वयवादी दार्शनिक विज्ञानभिक्षु ने गद्य और पद्य दोनों शैलियों का प्रयोग किया है। उनके गद्य और पद्य अत्यन्त सजीव, सरल और सुबोध हैं। दर्शन के मूल तत्वों को भी सरल रीति से प्रस्तुत करने में वे पूर्णतः सफल है।

अपनी भाषा तथा तर्कों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उन्होंने अनावाश्यक रूप से शत एवं सहस्रशब्दों का प्रयोग किया है। यथा- योगशास्त्र सहस्त्राणाम्, वाक्यशतेभ्यः,[7] भ्रमशतान्तः पातित्वे न,[8] शतशः साधितत्वेन'[9] आदि। अपने विपक्षियों के मतों के खण्डन के क्रम में विज्ञानभिक्षु कभी कभी अत्यन्त कठोर शब्दों के प्रयोग में भी संकोच नहीं करते हैं यथा- आधुनिक वेदान्तिनः कलिकृतः अपसिद्धान्तः[10] आदि तक कह दिया है। अन्य प्राचीन भारतीय दार्शनिकों की तरह आचार्य विज्ञानभिक्षु ने अपनी रचनाओं में श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणों से प्रचुर मात्रा में उद्धरण प्रस्तुत किया है।

आचार्य विज्ञानभिक्षु ने ज्ञानमीमांसा के अन्तर्गत अन्य सांख्यदार्शनिकों की तरह प्रमा के स्वरूप एवं स्वभाव का भी विवेचन किया है। इसी प्रकार अप्रमा तथा प्रमाण पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि प्रमाणें द्वारा विवेक ज्ञान की प्रप्ति होती है। उनके अनुसार श्रुतियो में भी प्रमाणों की विवेचना उपलब्ध है। उनका कहना है कि ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो इति''[11] विज्ञानभिक्षु ने यह स्पष्ट किया है कि पातंजल भाष्य की भॉति सांख्य मतों में भी पुरूषनिष्ठ बोध ही प्रमा है।[12] इनकी प्रमा एवं प्रमाण विषयक अवधारणा योगाचार, बौद्धों एवं न्याय-वैशेषिकों के मतों से भिन्न है। प्रमा आत्मा या पुरूष में उपलब्ध नहीं है प्रत्युत उस पर आरोपित मात्र है। उन्होंने प्रत्यक्ष अनुमाान और शब्द को ज्ञान का साधन माना है। बुद्धि पुरूष के चैतन्य को प्रतिबिम्बित करती है। इस प्रकार वह चेतन हो जाती है। परिणामस्वरूप बुद्धि के अहंकार को पुरूष द्वारा मिथ्यापूर्वक अपना लिया जाता हैं। विज्ञानभिक्षु ईश्वरवादी चिन्तक हैं। वे स्वीकार करते हैं कि कपिल के सांख्यसूत्र में ईश्वर का स्थान नहीं हैं। पुरूष और प्रकृति ही चरम तत्व है। विज्ञानभिक्षु यह स्वीकार करते हैं कि कपिल निरीश्वरवादी हैं फिर भी उन्होनें सांख्य दर्शन में ईश्वर का स्थान निरूपित करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है।

अद्वैतवेदान्तियों ने आत्मा या पुरूष को आनन्दस्वरूप माना है, परन्तु विज्ञानभिक्षु ने इसका विरोध किया है। इनके अनुसार आत्मा या पुरूष में न सुख पाया जाता है और न दुःख। अन्य सांख्य दार्शनिकों की तरह विज्ञानभिक्षु भी पुरूष को आनन्दस्वरूप नहीं मानते हैं। पुरूष स्वयं ज्ञाता और प्रकाशक है। आत्मा या पुरूष की अनेकता को सिद्ध करने के लिए उन्होंने आधुनिक वेदान्तिओं के प्रतिबिम्बवाद का खण्डन किया है। अन्य सांख्याचायों की तरह विज्ञानभिक्षु ने भी पुरूष में गुणात्मक एकता तथा संख्यात्मक अनेकता को स्वीकार किया है। विज्ञानभिक्षु के अनुसार जगत् की यथार्थ सत्ता है। यह जगत् उत्पन्न होता है, स्थिर रहता है, वृद्धि को प्राप्त होता है, क्षीण होता है तथा अन्त में विनष्ट हो जाता है। इन अवस्थओं में से किसी-न-किसी अवस्था में जगत् अवश्य रहता है तथा यह चेतन तथा अचेतन दोनो प्रकार के पदार्थों से युक्त है। जगत् की उत्पत्ति के प्रसंग में विज्ञान-भिक्षु को कई विन्दुओं पर अद्वैत वेदान्तियों एवं प्राचीन सांख्याचार्यों से मतैक्य तथा मतवैभिन्य दोनों है। अन्य सांख्याचार्यों की भाँति वे मानते हैं कि सृष्टि का विकास पुरूष एवं प्रकृति के संयोग से होता है। विज्ञानभिक्षु सर्वथा सत्कार्यवादी हैं। उनके अनुसार सृष्टि द्वारा उन्हीं चीजों की उत्पत्ति होती है जो पहले से प्रकृति के अन्दर शक्ति या वीज के रूप में विद्यमान होता है। वे सत्कार्यवाद के भेद और परिणामवाद के समर्थक हैं, परन्तु विवर्तवाद के नहीं। जगत् के विकास विषयक सिद्धान्त के प्रसंग में उनका मानना है कि सृष्टि का आदि और अन्त सुनिश्चित है। जगत् का विकास सर्वथा चक्रवत् होता रहता है। प्रकृति विविधतापूर्ण विश्व को अपने अन्दर से विकसित कर पुनः उसे प्रलय में अपने अन्दर समाहित कर लेती है। उन्होंने अविद्या को पुरूष के बन्धन का कारण स्वीकार किया है। बन्धन का एकमात्र कारण यह है कि पुरूष अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है। वह अपनी प्रकृति या उसके विकारों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती है यही उसका बन्धन है। विज्ञानभिक्षु ने कैवल्य, मोक्ष तथा अपवर्ग इन तीनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया है। त्रिविध दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। विज्ञानभिक्षु की मान्यता है कि अष्टांग योग का अभ्यास विवेक ख्याति की उत्पत्ति का साधन होने के कारण कैवल्य प्राप्त करने का अनिवार्य अंग है। इसी प्रकार विज्ञानभिक्षु ने दर्शन के विविध आयामों पर अपना मंतव्य प्रस्तुत किया है तथा विविध स्थलों पर समन्वयवादी दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करने का श्लाधनीय प्रयास किया है।

विभिन्न दर्शन-संप्रदायों के बीच समन्वय स्थापित करने का तत्पर्य है, उनके बीच अवरोध स्थापित करना। जिन दर्शनिकों ने ऐसा प्रयास किया है, उनका कथन है कि समस्त आस्तिक दर्शन वेदों पर आधारित है तथा इनके जनक अत्यन्त सिद्ध एवं तत्त्वदर्शी ऋषि हैं। अतः वे कभी भी असत्य, मिथ्या एवं भ्रान्त नहीं हो सकते हैं। इनके प्रति श्रद्धा और सम्मान के कारण भी कतिपय चिन्तकों ने विविध दर्शन सम्प्रदायों के बीच समन्वय स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। इनमें विज्ञानभिक्षु भी एक हैं। प्राचीनतम वैदिकसंहिता 'ऋग्वेद' में अनेक देवों में ऐक्य(Unity) का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि 'एकं

सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'।[13] विज्ञानभिक्षु ही ऐसे चिन्तक दृष्टिगत होते हैं, जिन्होंने विभिन्न दर्शनों के बीच व्याप्त मतभेदों को कम कर उनके बीच समन्वय लाने का प्रयास किया है। वे समस्त आस्तिक दर्शनों में अविरोध मानते हैं तथा सांख्य, योग एवं वेदान्त सम्प्रदायों के बीच ही मुख्यतः समन्वय लाने का सफल एवं श्लाघनीय प्रयास किया है। यद्यपि इन तीनों संप्रदायों के अपने अपने विशिष्ट संदेश एवं प्रयोजन की एकता के कारण उन्होंने उनमें सर्वथा अविरूद्ध एवं संगत सत्य का अवलोकन किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि विज्ञानभिक्षु के समन्वयवाद का स्वरूप अत्यन्त सहज और सरल है, क्योंकि उन्होंने समस्त आस्तिक दर्शनों के प्रति अत्यन्त उदार एवं उदात्त दृष्टिकोण अपनाया है। उनका कहना है कि सभी आस्तिक दर्शन वेदमूलक हैं और उनके जनक महान् ऋषि मनीषी हैं, इसलिए वे न तो भ्रान्त हो सकते हैं और न परस्पर विरोधी। उनका यह विश्वास ही उनके समन्वयवादी दर्शन का बीज-मंत्र है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

[1] *योगवार्तिक,* पृष्ठ संख्या 222

[2] ''कालार्कभक्षितं सांख्यशास्त्रं ज्ञान सुधाकरम्। कालावशिष्टं भूयोऽपि पूरयिष्ये वचोऽमृतैः।। - सांख्य प्रवचनभाष्य, मंगलाचरण

[3] वही, पृष्ठ संख्या 6, 61-64

[4] वही, पृष्ठ संख्या 3

[5] *योगवार्तिक,* मंगलाचरण

[6] *योगसारसंग्रह,* मंगलाचरण

[7] *योगवार्तिक,* पृष्ठ संख्या 456, 161

[8] सांख्य प्रवचनभाष्य, पृष्ठ संख्या 15

[9] विज्ञानामृतभाष्य, पृष्ठ संख्या 24

[10] वही, पृष्ठ संख्या 26

[11] सांख्यप्रवचनभाष्य, पृष्ठ संख्या 46

[12] सांख्यदर्शन का इतिहास, पृष्ठ संख्या 327

[13] *ऋग्वेद* -1 164 - 46

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,56-64
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 मार्च 2015

देव नदी सरस्वती का प्लक्षप्रस्त्रवण से उद्गम पौराणिक प्रमाण

डॉ. शरतेंदु बाली*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *देव नदी सरस्वती का प्लक्षप्रस्त्रवण से उद्गम पौराणिक प्रमाण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *शरतेंदु बाली* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

The present day river Markanda flowing at Ambala is the Vedic Saraswati.

This fact becomes evident upon reading the relevant section of the Mahabharata. The scripture clearly states that the mighty Rig-vedic river Saraswati was already much diminished during the Mahabharata era, and was re-incarnated from Rishi Markandeya's ashram. At the place where Sage Markandeya had his abode, the Saraswati appeared in the form of a spring from the roots of the Palaksh tree. This was situated in the area referred to as the *Plaksh-Prasar Vana* in the scriptures.

The Puranas clearly state that the Saraswati was almost disappearing during that era, which corresponds to the writing of the Mahabharata. Much of the river flow had gone underground, with only pools of water seen above the ground. The puranas also mention that the Saraswati was thereafter present as seven streams and was thus fragmented. Over the course of succeeding centuries, the flow in these streams further reduced considerably because of monsoon failure (1).The local populace was also repeatedly displaced brutally by several invading armies, but still the intense racial memory associated with the revered Saraswati survived and many small streams in the region(present day Ambala-Yamunanagar) were named after the River Goddess and continue to be identified as such even today.

The re-appearance of the river at Rishi Markandeya's ashram, as the Mahabharata and several Puranas state, led to the mental association of this stream with the great rishi. The pre-eminence of Sage Markandeya can be inferred from the fact that only a very few(or none) Puranas are named after a rishi. The health-giving waters of the spring which gushed forth from the roots of the mighty Plaksh tree , were sanctified by the famous rishi Markandeya, and the local people naturally started calling the

* प्रोफेसर, एम. एम. विश्वविद्यालय [मौलाना] अम्बाला (हरियाणा) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

waters by the same name. The great sanctity accorded to the River Markanda is apparent from the reverence it receives in present times; several temples are located along the course of the river, and offerings are made every Sunday when local people descend upon these spots with great pomp and celebration, accompanied with the beating of drums (*dhol*). Even though the river has no water for most months of the year, the offerings are still made worshipfully every Sunday.

This mostly dry river turns into an ocean of water during the monsoons, and the water expanse stretches for miles. The ground water re-charge this provides to the region is tremendous, and even today this area sustains large tree plantations . The soil is also replenished by the silt brought down from the muddy hills which form the cachment of the Markandeya river.Crops in this area yield bountiful harvests.Thus the river is a great benefactor even today.

There are several other monsoon rivers in the region, like the Amri, Omla,Begna and the Tangri which also flood during the rains. But none of them is even vaguely worshipped. That does make one think about the reason for the great reverence attached particularly to the Markanda.

Another significant statement in the scriptures is about one stream of the Saraswati being named Sambramati. The latter is obviously river Sabarmati. It is also a fact that Gujarat is home to a large number of Saraswat Brahmins. These lines are clearly shown in the Sanskrit slokas given below.These slokas are given in the Skanda Purana, in the Nagar Khand. There is an event regarding the clash between two spiritual giants of the Puranic era, Rishi Vishwamitra and Brahm- Rishi Vashisht. The story goes as follows :

In the fury of his enemity for Vashisht,Vishwamitra asked the River Saraswati to get him Vashisht who had his ashram upstream along the banks of the river. Saraswati refused to do this upon which Vishwamitra became furious and cursed the waters of the river to become bloody. The curse manifested and soon the river's banks became inhabited by Rakshasas who reveled in drinking the blood-laced waters. Saraswati was heart-broken and approached Sage Vashisht to neutralize the curse. The rishi agreed to redeem the divine river and did so after approaching the river as it emerged from the roots of the Plaksh tree.

ततः प्रभृति संप्राप्तं कथं तोयं प्रकीर्तय। सरस्वत्या महाभाग सर्वं विस्तरतो यद।।2।। उस दिन से लेकर कहो कि पुनः सरस्वती के प्रवाह में जल कैसे हुआ। हे महाभाग! यह सब विस्तार से कहो।

सूत उवाच, ''बहुकालं प्रवाहः स सरस्वत्या द्विजोत्तमाः। महान महान रक्त मयो जातो भूतराक्षससेवितः।।3।। कस्यचित्वथ कालस्य वसिष्ठो मुनिसत्तमः। अर्बुदस्थस्तया प्रोक्तो दीनया दुःखयुक्तया।।4।। तवार्थाय मुने शप्ता विश्वामित्रेण कोपतः। रूधिरौधवहा जाता तपस्विजनवर्जिता।।5।। तस्मात्कुरू प्रसादं मे यथा स्यात्सलिलं पुनः। प्रवाहे मम विपेन्द्र प्रयाति रूधिरं क्षयम्।।6।। त्रैलोक्य-करणे विप्र संक्षये वा स्थितौ हि वा। नाशक्तिर्विद्यते काचित्तव सर्वमुनीश्वर।।7।।'' सूत जी बोले- हे द्विजोत्तम! वह सरस्वती महानदी का प्रवाह बहुत काल पर्यन्त भूत तथा राक्षसों से सेवित महान् रक्तरूप को प्राप्त हुआ। यहाँ काल संख्या नहीं, कही। इसलिये लिखा है (*महाभारते। एवं सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता। अवहच्छेणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा।।* म0 भा0 श0 अ0 42, श्लोक 39। अर्थात् महाभारत में लिखा है, इस प्रकार जब बुद्धिमान विश्वामित्र के द्वारा सरस्वती को शाप दिया गया, तब उसने एक साल भर रक्त मिश्रित जल बहाया।)।।3।। पुनः किसी समय के अनन्तर आबु पर्वत पर विराजमान मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ जी से उसने (सरस्वती नदी) दुःखी होकर दीनता से कहा।।4।। हे मुनि! तुम्हारे निमित्त ही विश्वामित्र ने कुपित होकर शाप दिया। जिससे मैं रक्तसमूह हो बहाने वाली हुई; तथा तपस्विजनों ने भी त्याग दिया।।5।। हे विप्रेन्द्र (ब्राह्मणों में श्रेष्ठ) जिस प्रकार पुनः जल हो जाये तथा मेरे प्रवाह में रक्त नाश को प्राप्त हो। ऐसी कृपा मुझ पर करो।।6।। हे विप्र! हे मुनिश्वर! तीनों लोकों की रचना संहार तथा पालन करने की सब शक्ति तुम्हारे में विद्यमान है। ऐसी कोई नहीं जो न हो।।7।।

वसिष्ठ उवाच, ''तथा भद्रे करिष्यामि यथा स्यात् सलिलं पुनः। प्रवाहे तव निर्याति सर्वं रक्तं परिक्षयम्।।8।।'' वसिष्ठ जी बोले- हे कल्याणि! मैं वैसे ही करूँगा जैसे पुनः जल हो। तुम्हारे प्रवाह में सब रक्त परम नाश हो जाये।। ''एवमुक्त्वा स विप्रषिपरवर्तीय धरातले। गतः प्लक्षतरूं यस्मादवतीर्णा सरस्वती।।9।।'' ऐसा कहकर वह ब्रह्म ऋषि भूमि तल पर उतरकर उस प्लक्ष वृक्ष के पास गये।।

''समाधिं संधाय निविष्टो धरणीतले। संभवं परमं गत्वा विश्वामित्रस्य चोपरि।।10।। वारूणेन तु मंत्रेण वीक्षयन् वसुधातलम्। ततो निर्भिद्य वसुधां भूरितोयं विनिर्गतम्।।11।। रन्ध्रद्वयेन विप्रेन्द्रा लोचनाभ्यां निरीक्षणात्। एकस्य सलिलं क्षिप्रं यत्र जाता सरस्वती।।12।। प्लक्षमूले ततस्तस्य वेगेनापहृतं बलात्। तद्रक्तं तेन संपूर्ण ततस्तेन महानदी।।13।। द्वितीयस्तु प्रवाहो यः संभ्रमात्तस्य निर्गतः। सा च सांभूमती नाम नदी जाता धरातले।।14।। एवं प्रकृतिमापन्ना भूय एव सरस्वती। यत्पृष्टोऽस्मि महाभागाः सरस्वत्याः कृते द्विजाः।।15।। एतत्सारस्वतं ना व्याख्यानमतिबुद्धिदम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि मतिस्तस्य विवर्धते। सरस्वत्याः प्रसादेन सत्यमेतन्म-योदितम्।।16।।'' जिससे सरस्वती नदी का अवतार हुआ। वहाँ समाधि लगाकर विश्वामित्र के ऊपर परम संवेग (क्रोध करके) पृथ्वी के ऊपर बैठ गये।।10।। पुनः वरूणदेवता संबधि मंत्र के उच्चारण सहिततल को देखने लगे। उससे भूमि को भेदन कर बहुत जल निकला।।11।। हे विप्रेन्द्रों! जैसे देखने काल में एक ही अन्तःकरण की वृत्ति दोनों नेत्रों गोलकों से दो रूप धार कर निकलती है। ऐसे ही यह प्लक्षमूल से प्रकट हुई सरस्वती वहाँ शीघ्र एक का ही जल दोनों छिद्रों के द्वारा निकला। उसके पश्चात् उसका वह रक्त उस दूसरी धारा के द्वारा सम्पूर्ण बलपूर्वक अपहरण कर लिया वा वहा दिया। उसके द्वारा महानदी शुद्ध हो गई।।13।। पुनः जो दूसरा प्रवाह उसके संभ्रम (संवेग या भयपूर्वक त्वरा) से निकला। वह पृथिवी पर सांभ्रमती नदी नाम से विख्यात हुई।।14।। इस प्रकार वह सरस्वती नदी पुनः अपने स्वभाव (शुद्धरूप) को प्राप्त हुई। हे महाभाग द्विजों! यही सरस्वती के निमित्त करके आप ने मुझ को पूछा है। यह सारस्वत नामक व्याख्यान अति बुद्धि देने वाला है।।15।। जो इसको श्रद्धा से पाठ करे वा सुने सरस्वती के प्रसाद से उसकी बुद्धि बढ़ जाती है। यह मैंने सत्य कहा है।।16।।

''इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्त्रयां संहितायां षष्ठे नागरखण्डे श्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सरस्वत्युपाख्याने सरस्वतीशाप-मोचनसांभ्रमत्युत्पत्तिवृत्तांतवर्णनं नाम त्रिसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः'' अर्थात् इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण वा इक्यासी सहस्त्र संहिता के छटे नागर खण्ड के अन्तर्गत श्रीहाटकेश्वर क्षेत्र माहात्म्य के सरस्वती उपाख्यान में सरस्वती शाप मोचन और सांभ्रमती की उत्पत्ति वृतांत वर्णन नामक एक सौ त्यहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।

Saraswati today — A brief description

Due to resurgence of interest in all things Indian in recent decades, many inquiries have been made regarding the course of the Vedic Saraswati. Satellite images have indicated towards the existence of a large river bed along the course of the Ghaggar in Rajasthan. The Haryana government has identified and developed some sites associated with the river, primarily Pehowa in Kurukshetra district, Adh-Badri and Mustafabad in Yamuna-nagar district, and the great water bodies of Brahm Sarovar and Sannihit Sarovar near Thanesar. In fact, the river is believed to be now represented by a series of water bodies, called 'sar'(sar=sarovar=lake). Pehowa is definitely believed to be located on the banks of the sacred Saraswati, and the ancestral rites are performed alongside the pond situated there.

Two more sites associated with the vedic Saraswati are : Bilaspur in Yamunanagar and Barara in Ambala district. Bilaspur is supposed to be a distorted version of Vyas-pur, the place where the venerable Ved Vyas assembled and codified the Vedas along the banks of the Holy Saraswati, Goddess of learning. Even today , a stream runs there and the bridge over the stream is labeled as Saraswati bridge. Over a hundred years back, this stream was located and marked as such by the famous gazetteer Lord Cunningham.

Besides these , there is a short river Saraswati in the higher Himalayas which runs for a small distance before disappearing into a gorge. Another river called Saraswati flows in Gujarat. This Gujarati river corresponds to the description given in the Mahabharata, since the Saraswati is supposed to have flowed westwards to meet the western seas. According to folk-lore, an eastern sub-terranean branch of the river meets the Ganges at Triveni (prayag / Allahabad) — confluence of the Ganga, Yamuna and Saraswati.

On looking up the meaning of the Sanskrit word Plaksh in the Sanskrit – Hindi dictionary, the result was astonishing ; there were two meanings, one was a *Goolar* tree and the second that it was the origin of the river Saraswati. The Plaksh tree at Markandey Ashram is from the same family as *Goolar* tree .The characteristic feature of these fig trees is that the small ball-like fruit grow in clusters on or close to the tree trunk, termed cauliflory. The fig (Ficus) trees that grow in India include the white fig (Pakhar, Pilkhan),Goolar, Banyan and the Peepal. In the Atharva Veda, the fig tree (*Udumbara*)is given prominence as a means of acquiring prosperity and vanquishing foes(3).

The narrative in the puranas talks about the origin of Saraswati from two springs. In fact , at the Markandey Ashram there is another spring arising from the roots of another fig tree, called the Simbal tree. Similar phenomenon is seen at nearby Renuka jee, the lake named after the mother of Rishi Parashuram. Here, springs are seen arising from the roots of huge Fig trees, thus establishing the authenticity of the entire wooded area as Plaksh-prasar Vana. At this historical Renuka lake , there is a confluence of three streams, one arising from the base of a fig tree, and is named Triveni, also known as Ram-ghat. Since Triveni is classically associated with one stream of the Saraswati, this lends further credence to the view that this spring at Renuka lake is also one branch of the Saraswati.

Recent radio-active dating studies carried out on the ancient water sources in Haryana and Rajasthan have determined that around four thousand years ago, there was a prolonged period of drought in North-west India due to failure of the South-west monsoon (1,2). It stands to reason that such a long drought would have resulted in drying up of water souces like springs and *baolis.* For a spring fed river like the Saraswati, this proved calamitous, and the perennial river became reduced to a seasonal one.

The Huge Fig (Plaksh) Tree At Markandey Ashram

Nomenclature of Rivers in India

Rivers in India have an assortment of names. A river may be named after a great personality, a God or a geographical feature. Thus the Ganges is also called the Bhagirathi after the king who engineered its descent from the Himalayas. The Yamuna is named after God Yama, whose sister it is supposed to be. The Mandakini, originating from the Chitrakoot hills, is so called because of its gentle flow (*mand*=slow).

Usually, the origin of a river is considered from the point from where the length of the river becomes longest. Any river usually has a large number of tributaries, so it is open to question which tributary is

to be considered as its origin. If we take the Ganga, the major tributaries are the Alaknanda, Mandakini, Jahnavi and the Bhagirathi. The origin is generally supposed to be from Gangotri/Gaumukh which is the starting point of the Bhagirathi. Before their confluence at Dev-prayag the tributaries of the Ganga are separately called by their respective names, and it is only at Dev-prayag where the Bhagirathi joins the Alaknanda where the Ganga is finally formed and called as such.

The great significance of the engineering feat attributed to King Bhagirath,whereby he brought the Ganga down to Earth, led to the Ganga being subsequently called Bhagirathi, so much so, that the two names are almost synonymous. The river Vipasha after the great penances performed on its banks by the Rishi Ved Vyas, subsequently came to be known as Vyas, or Byas. Thus we see that rivers in India are called by various names, and public imagination plays a great role in this. The river known as Vishwamitri flows in areas close to Vadodara, no doubt due to the intimate association of the river with Rishi Vishwa-mitra. Yamuna is also known as Kalindi which is the name of the mountain near the source of the river.

Logically extending the above arguments to the ancient river Saraswati, which had lost much of its flow by the time of the great Mahabharata war (Dwapar-yuga), the re-emergence of the river from Rishi Markandeya's ashram at the rishi's behest would naturally have lead it to being named after the great rishi. The story of the Saraswati re-appearing at Markandeya's ashram is narrated in the Brihan Naradiya Purana. Since the munificient rivulet appeared at Rishi Markandey's ashram and the latter was already a well renowned ascetic, it came to be known after the great rishi. Especially so, since the Saraswati had earlier on,fragmented into numerous small streams, all flowing from the lower Shivaliks towards the plains of Ambala and Kurukshetra.

The emergence of the Saraswati from the roots of the Plaksh tree is documented in several Puranas, as also in the Mahabharata. This Palaksh or Pakhar (Indian fig) tree still stands today, and the very size and form of the tree testifies to its age. Please note that the trees of the Fig family, like the Banyan, never really perish since the branches give rise to new trees, by the process of vegetative reproduction. All these references stating the re-appearance of the divine Saraswati have been presented here, alongwith the associated stories. All readers are welcome to experience the authenticity of this Puranic narration by visiting the spot near Kala Amb, on the road to Paonta Sahib.

Near to this location of Markandey Ashram, which is located in a long East-West valley, on the southern side across the low hills to the south is the ancient temple of Adh-Badri. Next to this temple is the spot marked by the Haryana Govt. as the origin of Saraswati. A few kilometers away is the village of Bilaspur, in the plains,where still flows a small rivulet marked as Saraswati. It is at Bilaspur that Maharishi VedVyas is said to have penned the Puranas. A tank by the name of VyasKund still exists at Bilaspur, and is associated with the spot where Duryodhana is supposed to have hidden towards the end of the Mahabharata war – the lake known as Vyas-hrid in the epic.

SPRING AT
PLAKSH
TREE
Jamta
Burma Papri
Palion
Andheri
Nahan
Katola
Trilokpur
Khajurna
Mirpur
Gurdwara
Johron
Rampur Jatan
Kala Amb
Dera
Jogi Ban
Nagal Saketi
MARKANDA RIVER
River Roon

Burma Papri
Nahan
Kamrau
Sataun
Dhara
Kala Amb
Naraingarh
Majra
Dakpatthar
Vikasnagar
Dhaula Kuan
Paonta Sahib
Sahaspur
Rampur
Sadhaura
Taharpur
Arjan Majra
Bilaspur
Chintpur
Karkauli
Yakubpur
Kothra
Jaidhar
Bhagwanpur
Bhukhri
Mustafabad
Jagadhri
Behat
Gyasuddin Pur
Yamuna Nagar
Nagla Khurd
Randaul
Malaheri
Navada
Sabhapur
Chilkana

References Given In The Puranas

In the Vamana Purana, there is the narrative about the great penance done by Rishi Markandeya, as a result of which the Goddess Saraswati agrees to re-appear on Earth at his Ashram. She reincarnated in a giant Fig tree (Plaksh tree), and the rishi fervently prayed to her,as narrated by rishi Lomharshana :

लोमहर्षण उवाच, ''प्लक्षवृक्षात्समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी। सर्वपापक्षयकरी स्मरणादपि नित्यशः।।3।। सैषा शैलसहस्राणि विदार्य च महानदी। प्रविष्टा पुण्यतोयैषा वनं द्वैतमिति श्रुतम।।4।।'' लोमहर्षण बोले- सरिताओं में श्रेष्ठ तथा सनातनी नदी प्लक्षवृक्ष से (पाकर से) प्रकट हुई तथा स्मरण मात्र से भी नित्य ही सब पापों को क्षय (नाश) करने वाली है।।3।। वही यह महानदी सहस्रों (हजारों) पर्वतों को विदीर्ण करके यह पवित्र जल वाली द्वैतवन में प्रविष्ट हुई। ऐसा हमने सुना है।।4।।

''तस्मिन प्लक्षे स्थितां दृष्ट्वा मार्कण्डेयो महामुनिः। प्रणिपत्य तदा मूर्ध्ना तुष्टावाथ सरस्वतीम्।।5।।'' उस समय महामुनि मार्कण्डेय ने उस प्लक्ष (पिलखन) वृक्ष में स्थित सरस्वती को देखकर मस्तक से प्रणाम करके स्तुति की।।5।।

''एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती। प्रत्युवाच महात्मानं मार्कण्डेयं महामुनिम। यत्र त्वं नेष्यसे विप्र तत्र यास्याम्य-तन्द्रिता।।13।।'' जब इस प्रकार स्तुति की तब उस भगवान् विष्णु की जिह्वा रूपी सरस्वती देवी ने महात्मा महामुनि मार्कण्डेय को उत्तर दिया। हे विप्र! जहां तुम मेरे को ले जाओगे वहां मैं आलस्य को त्याग कर जाऊंगी।।13।। (इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये सरस्वतीस्तोत्रं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।32।)

In the Vamana Purana, there is another reference to the Divine Saraswati having appeared from the Plaksh tree. The Devi is referred to as The Tongue of Lord Hari and the daughter of Lord Brahma :

''तत्र देवी ददर्शाथ पुण्यां पापविमोचनीम्। प्लक्षजां ब्रह्मणः पुत्रीं हरिजिह्वा सरस्वतीम।।13।। सुदर्शनस्य जननीं ह्रदं कृत्वा सुविस्तृतम। तस्यास्तज्जलमासाद्य स्नात्वा प्रीतोऽभवन्नृपः।।14।।'' उस वन में प्रवेश करने के अनन्तर वहां पर पापों को नाश करने वाली भगवान हरि की जिह्वा ब्रह्मा जी की पुत्री प्लक्ष (पाकर) से उत्पन्न होने वाली पवित्र सरस्वती देवी को देखा।।13।। जो सुदर्शन की माता है। उसको देखा। पुनः शोभनविस्तार युक्त सरोवर का निर्माण करके और सरस्वती का जल उसमें लाकर तथा स्नान करके राजा प्रसन्नता को प्राप्त हुआ।।14।। (इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्यायः।।22।।)

In the Skanda Purana, upon being beseeched by the Gods to descend upon Earth in order to carry the devastating Badwa fires to the western seas, The Goddess Saraswati agrees. She parts company from her friend Ganga and descends upon Earth, appearing at the Fig tree :

''स्वतेजसा द्योतयन्ती सर्वमामासयज्जत्। ततो विसृज्य तां देवी नदी भूत्वा सरस्वती।।40।। हिमवन्तं गिरि प्राप्य प्लक्षातत्र विनिर्गता। अवतीर्णा धरा पृष्ठे मत्स्यकच्छपसकुला।।41।।'' अपने तेज से प्रकाशित होती हुई उसने संपूर्ण जगत को प्रकाशित कर दिया। उसके अनन्तर उस गंगा देवी को त्याग कर स्वयं नदी का रूप धारण कर सरस्वती हिमालय पर्वत पर पहुंच कर वहां प्लक्ष (पाकर) से प्रकट हुई।। 40-41।। (इति स्कन्द म0 पु0 में0 प्रभास खं.(प्र0 क्षे0 मा0 1) 33 में अध्या0 निरूपतम्।।)

In the Narada Purana, is given the narrative about the intense endeavor undertaken by the great Prince Kuru, whence he single-handedly ploughed the area around the lake called Ram-hrud(which had been filled with blood of Haihya kshatriyas by Lord Parashuram as vengeance against the murder of his father Jamdagni). This area later came to be known as Kurukshetra after the prince. Severe penance done by Rishi Markandeya resulted in the appearance of Goddess Saraswati from the Plaksh tree at his ashram, and after manifesting there she filled up the huge Sanihit lake and thence proceeded westwards :

''रामतीर्थ ततः ख्यातं संजातं पापनाशनम्। मार्कण्डेयेन मुनिना संतप्तं परमं तपः।।7।। यत्र तत्र समायाता प्लक्ष जाता सरस्वती, सा सभाज्य स्तुता तेन मुनिना धार्मिकेण है। सरः सेनिहितं प्लाव्य पश्चिमां प्रस्थिता दिशम्। कुरूणा तु ततः कृष्टं यावत्क्षेत्रं समन्ततः।।'' यहां पर मार्कण्डेय मुनि ने परम तप किया था। वहां पर प्लक्ष से उत्पन्न होने वाली सरस्वती आई अर्थात प्रकट हुई। उस धार्मिक मुनि के द्वारा स्तुति (प्रशंसित) वह भी मुनि का सम्मान करके पुनः संनिहित सर को प्लावन (पूर्ण भर) करके

पश्चिम दिशा को प्रस्थान किया (चली गयी) तब से यावत्परिमाण (जितने माप) में क्षेत्र था उसको चारों ओर से कुरू ने कर्षण किया।। (इति श्रबृहिन्नारदीयपुराणे उतरभागे कुरूक्षेत्रमाहात्म्ये क्षेत्रप्रमाणादिनिरूपणं)

In the Padma Purana, in the first Srishti khand in Nanda Prachi mahat-maye, the event of the descent of the Goddess Saraswati is chronicled. Ganga tells Saraswati that she (the former) is holier and more pure while flowing northwards(the Ganga normally flows south and east), while the latter is especially bountiful and holier when flowing east-wards(as happens at Pehowa).The relevant verse about the manifestation of Saraswati from the Plaksh tree is :

''अधस्तात्प्लक्षवृक्षस्य अवरोप्य च तां तनुम्। अवतीर्णा महाभागा देवानां पश्यतां तदा।।189।।'' उस काल में महाभागा सरस्वती देवताओं के देखते हुए ही अपने देव शरीर को भूमि में घुसा कर पुनः पाकर वृक्ष के नीचे से प्रकट हुई। (इति श्री पाद्‌मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे नन्दा प्राची माहात्म्येऽटादशोऽध्यायः।।)

It is amply clear from all these *slokas* in so many different scriptures that the river Saraswati emerged on earth from the base/roots of the Pilkhan tree at the ashram of Rishi Markandeya. The tree itself is described here as a manifestation of Lord Vishnu. The Plaksh tree is also mentioned as being akin to the four-headed Brahma. In fact, looking closely at the pictures, we can appreciate four trunks of the massive tree.

It is further clear from the narrative in the Skanda Purana that the Pakhar tree from which the river emerged was hollow, and acted like a hut for the goddess to rest before emerging.In reality today the largest trunk is quite hollow , and small children while at play routinely enter from below and emerge near the top.

''उद्‌भूता सा तदा देवी अधस्ताद्‌वृक्षमूलतः। तत्कोटरकुटी कोटीप्रविष्टानां द्विजन्तनाम्।।22।। श्रूयन्ते वेदनिर्घोषा सरसारक्तचे-तसाम्। विष्णुरास्ते तत्र देवो देवानां प्रवरो गुरूः।।23।। तस्मात्स्थानात्ततो देवी प्रतीच्याभिमुखं ययौ।।24।।'' उस वृक्ष के कोटर (मध्य में खोखला भाग) रूप कुटी में प्रविष्ट हुए तथा प्रेम से रंगा हुआ चित्त जिनका ऐसे करोड़ संख्यक द्विजों की वेदध्वनियां सुनी जाती है। वहीं पर देवताओं के मुख्य शासक भगवान विष्णु देव विराजते हैं अर्थात् उनका स्थान है।।23।। उस स्थान से वह देवी पश्चिम दिशा को मुख करके चली गई। (इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां षष्ठे नागरखंड श्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सरस्वत्युपाख्याने सरस्वतीशापमोचनसांभ्रमत्युत्पतिकृतांतवर्णनं नाम त्रिसप्तत्युत्तरशतृतमोऽध्यायः।।173।।)

The Mahabharata by Maharishi Ved Vyas records the course of the sacred river Saraswati and the places located along her banks from the sea to the Himalayas in an interesting episode. As is well known , Duryodhana was a favorite pupil of Lord Balarama, the elder brother of Lord Krishna. When the inter-necine Kuru war became imminent and Krishna would not side with Duryodhana despite his elder wanting so, Lord Balarama threw a fit and decided to undertake a pilgrimage, far from the events of the war. He started his pilgrimage from the point where the River Saraswati meets the sea, and proceeded upwards along its course .On reaching Kurukshetra and then Kapal mochan tirthas, Balarama duly takes the ritual bath and then proceeds towards the Shivaliks. It is clearly mentioned that in the hilly tract near the emergence of the Yamuna from the hills, Balarama visits the pilgrimage spot where the Saraswati emerges from the roots of the Pakhar tree. Also nearby is mentioned a spot where the divine waters emerge from an ant-hill, and are said to be especially beneficial for a spa.

''सौगन्धिकवनं राजन् ततो गच्छेत् मानवः।।4।।'' हे राजन! वहां से मानव सौगन्धक वन को जाए।।4।। ''तद्वनं प्रविशन्नेव सर्वपापैः प्रमुच्यते। ततश्चापि सरिच्छ्रेष्ठा नदीनामुत्तमा नदी।।6।। प्लक्षाधेवी स्रुता राजन् महापुण्या सरस्वती। तत्राभिषेकं कुर्वीत वल्मीकान्निःसृते जले।।7।।'' उस वन में प्रवेश होते ही सब पापों से मुक्त हो जाता है। हे राजन ! उस वन में श्रेष्ठ सरिता और सब नदियों में उत्तम तथा महापवित्र सरस्वती देवी प्लक्ष से टपकती है वहां पर वल्मीक (वरमी) से निकलने वाले जल

में स्नान करे।।6-7।। (इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि पुलस्तीर्थयात्रायां चतुरशीतितमोध्यायः।।84।। (एवं श्री पा0 पु0 स्व0 खं0 अ0 2, श्लोक 6,7)

The narrative continues describing the visit of Balarama to the region.

''श्रुत्वा ऋषीणां वचनमाश्रम तं जगाम ह। ऋषींस्तानभिवाद्याथ पार्श्वे हिमवतोऽच्युतः।।1।।'' ''संध्या-कार्याणि सर्वाणि निर्वर्त्यारूरूहऽचलम्। नातिदूरं ततो गत्वा नगं तालध्वजो बली।।10।। पुण्यं तीर्थवरं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः। प्रभवं च सरस्वत्या प्लक्षप्रस्रवणं बलः।।11।।'' ऋषियों के वचन को सुनकर वह अच्युत हलधर उस आश्रम में गए। जो हिमालय के पार्श्व भाग (वगल) में विद्यमान था। वहां ऋषियों को अभिवादन (प्रणाम) करके सब सन्ध्या कार्यो को निपटाकर तत्पश्चात् पर्वत पर चढ़े। वह ताल वृक्ष के चन्हि युक्त ध्वजा वाले बलवान राम (पर्वत पर अतिदूर न जाकर थोड़ी दूर) वहां से पवित्र श्रेष्ठ तीर्थ को देखकर परम विस्मय (आश्चर्य) को प्राप्त हुए। पुनः जो सरस्वती का उद्गम स्थान तीर्थो में उत्तम तथा कारपवन मुख्य प्लक्ष प्रस्रवण नाम तीर्थ को बलराम संप्राप्त हुए। अर्थात वहां पहुंच गए। (इति श्री -महाभारते शल्यपर्वणि गदापर्व. बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने संक्षिप्तश्चतुपंचाशत्तमोऽध्यायः)

The actual position on the ground is exactly as has been described in the Mahabharata, regarding the proximity of Plaksh-prasar vana to the Yamuna.The Plaksh tree described above at Markandey Ashram is located very close to Paonta Sahib (about 15-16 kms), where the Yamuna enters the plains. The pilgrimage spots mentioned in Lord Balaram's *yatra* are existing even today. The topography of the Shivalik piedmont is also peculiar in this region,with rain-fed streams flowing either towards the Yamuna or into the Markanda(Saraswati), with a wide inter-communication between the two catchments, known as the Bata. This feature strongly suggests the presence of large tributaries joining the Markanda in the past.

In his well researched and wonderfully written book, Michel Danino has presented a strong case for the existence of The Saraswati in Vedic times(4).He has also mentioned the possibility of the Markanda being a more suitable candidate for the upper course of the Saraswati than either the marked origin at Adh-Badri or the stream named as Sarsuti in the region. The monologue published by Sadhu Sewa Munshi Ram Sood, Bahadurpur, Hoshiarpur under the title Shri Saraswati Mahanadi Nirnaya also convincingly presents the case of the Markanda being the actual Saraswati. Shri O P Bharadwaj in his book " In search of Vedic Harappan Relationship", identifies Plakshaprasaravana with a location in the Nahan district of the Shivaliks.

References

Abrupt weakening of the summer monsoon in northwest India 4100 yr ago. Yama Dixit, David A Hodell and Cameron A Petrie, Geology 24 February 2014.

Holocene Aridification of India. Liviu Giosan, Camilo Ponton,Woods Hole Oceanographic Institution,15 March 2012.

Encyclopedia Indica, Anmol Publishers. Shyam Singh Shashi,The Tree Cult, pgs 244-246, Chapter 9, 1999.

The Lost River , On the trail of the Sarasvati,Penguin Books, 2010. Michel Danino, pg 64.

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रमानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।